[illegible]:

 51

चरित्ररक्षामणिः

(भाषा टीका सहित)

नैतिक शिक्षा का उपदेश

लेखक :

श्री सुखदेव शास्त्री

सिद्धान्त वाचस्पति 1453





प्रकाशक

मधुर-प्रकाशन

आर्य समाज मन्दिर, बाजार सीताराम, दिल्ली-६

प्रथम बार) गणतन्त्र दिवस १९७८ (मूल्य ४.००

सम्पादकीयम्—

चरित्ररक्षा विषयक इस ग्रन्थ का नाम "चरित्ररक्षामणि" रखा गया है। इसलिए सर्वप्रथम मणि के सम्बन्ध में ही विचार करते हैं।

अथर्ववेद के लगभग २०० सूक्तों में मणि का वर्णन किया गया है। मणि शब्द "मणि शब्दे" धातु से उणादि "इन" प्रत्यय करके सिद्ध होता है। महर्षि दयानन्द ने इसीलिए "मणति शब्दयतीतिमणिः" अर्थात् जो उपदेश दे उसे मणि कहते हैं, यह अर्थ किया है। फलतः उपदेशक, शिक्षक, राष्ट्रनेता, आचार्य, गुरु, मार्ग-दर्शक इत्यादि सभी मणि शब्द के अर्थ में अन्तर्भूत हो जाते हैं। इसी प्रकार "मनुसाने" "मनस्तम्भे" मनु अवबोधने "इन से भी छान्दसणत्व करके" मणि शब्द बनता है, अतः इस शब्द से तीन अर्थों का बोध होता है।

१—जो ज्ञानी हो। २—जो स्तम्भ के समान किसी का सहारा हो। ३—जो शत्रुओं का स्तम्भन करता हो या राज्य का भार वहन करता हो। ऐसी पवित्र मणि को पाकर मनुष्य विशिष्ट शिरोमणि बन जाता है। इतने सुन्दर तथा व्यापक अर्थ होने के कारण इस पुस्तक का नाम "चरित्ररक्षामणिः" रक्खा गया है।

वैसे कौशिक सूत्रों में मणि शब्द से किसी विशिष्ट पदार्थ की गुटिका बनाकर गले, हाथ या कटि में बांधने का जो विधान किया गया है वह अवैदिक है। यह बात वेद पढ़ने से ज्ञात हो जाती है।

कुछ भाष्यकरों ने मणि शब्द से अनुचित कल्पनाएं भी की हैं जैसे—कृष्णलमणि, शुल्कवीरणमणि, इवीकामणि, अभीवर्तमणि, हिरण्यमणि, जंगिड़-मणि, पर्णमणि, दशवृक्षमणि, स्राक्यमणि या तिलकमणि, पर्णमणि, अश्वत्थमणि, अरलमणि, हस्तदन्तमणि, शखमणि, इत्यादि यह सब मणि कल्पित ही है। मेरा अभिप्राय तो महर्षि दयानन्द द्वारा प्रदर्शित मणि से ही है।

अथर्ववेद में मणि का वर्णन

अथर्ववेद के द्वितीयकाण्ड, सूक्त ४-३ में इस वीर्य रूप मणि का कितना सुन्दर वर्णन आया है यह भी मनन करने योग्य है :

दीर्घायुत्वाय बृहते रणायारिष्यन्तो दक्षमाणाः सदैव ।
मणिं विष्कन्धदूषणं जङ्गिडं बिभृमो वयम् ॥

हम लम्बी आयु के लिए और बहुत बड़ी आनन्द की प्राप्ति या जीवन संग्राम में विजय के लिए सदा ही प्रयत्न और बल का कार्य करते हुए तथा नाश को प्राप्त न होते हुए, शरीर के रस को सूखने से हटाने वाले, सन्तानोत्पादक अंश को अपने भीतर रखने वाले वीर्य-रूप मणि को उत्तम रूप से सुरक्षित रक्खें।

जङ्गिडो जम्भाद् विशराद् विष्कन्धादभिशोचनात् ।
मणिः सहस्रवीर्यः परिणः पातु विश्वतः ॥

वह जंगिडमणि रूप वीर्य शरीर में वास्तव में उत्तम धन है, वह हमारी नाश से, अनेक प्रकार के हथियारों से, रक्तदोष से, तथा हाथ-पैर आदि के जलन से सदा हमारी रक्षा करे।

अयं विष्कन्धं सहतेयं बाधते अत्रिणः ।
अयं नो विश्वभेषजो जङ्गिड पात्वंहसः ॥

ब्रह्मचर्य से रक्षित वीर्य रक्त-शोषण को दबा देता है। यह स्त्री पुरुषों को खा जाने वाले काम-क्रोध आदि शत्रुओं का नाश करता है। यह ब्रह्मचर्य रूप महौषध हमें हत्या या पाप प्रवृत्तियों से बचाए।

देवैर्दत्तेन मणिना जङ्गिडेन मयोभुवा ।
विष्कन्धं सर्वा रक्षांसि व्यायामे सहामहे ॥

हमारे विद्वान् माता-पिता तथा आचार्य आदि देवों द्वारा दिए हुए कल्याणकारी ब्रह्मचर्य रूपी उत्तम धन द्वारा रस या रक्त के शोषण को तथा सब राक्षसी भावों को हम पराजित करते हैं। और व्यायाम के द्वारा रक्त शोषण रोग तथा राक्षसी भावों को दूर करते हैं।

शणश्च मा जङ्गिडश्च विष्कन्धादभि रक्षताम् ।
अरण्यादन्य आभृतः कृष्या अन्यो रसेभ्यः ।।

सात्विक अन्न, तथा ब्रह्मचर्य मेरी रक्त शोषण रोग से रक्षा करें। ब्रह्मचर्य का भाव तो जंगल में स्थित ब्रह्मचर्याश्रम व वानप्रस्थ द्वारा प्राप्त किया जाता है। तथा अन्न कृषि से प्राप्त किया जाता है, अर्थात् ब्रह्मचर्य तथा सात्विक अन्न ये दो उपाय हैं जिसके द्वारा शारीरिक रक्त शोषण तथा अन्य व्याधियाँ भी दूर की जा सकती हैं। ब्रह्मचर्य के भाव की रक्षा वनों में ही हो सकती है न कि नगरों में; जहां चारों ओर प्रलोभन का ही वातावरण होता है।

कृत्यादूषिरयं मणिरथो अरातिदूषिः ।
अथो सहस्वाञ् जंगिडः प्र ण आयूंषि तारिषत् ।।

यह ब्रह्मचर्य रूप मणि राक्षसो भावों और विनाशक सेनाओं का नाश करने वाली है। और कंजूसी आदि के भावों को नाश करने वाली है। और यह ब्रह्मचर्य की भावना ही साहस की जननी है। वीर्य रक्षा की भावना ही हमारी आयु को बढ़ाए।

दीर्घ जीवन प्राप्ति के लिए तथा सब प्रकार के रोगों की समाप्ति के लिए ब्रह्मचर्य रूप मणि का प्रत्येक मनुष्य के लिए धारण करना आवश्यक है।

अथर्ववेद के दूसरे ही काण्ड में तथा यजुर्वेद के चौंतीसवें अध्याय के ५१ वें मन्त्र में भी ब्रह्मचर्य साधना का बड़ा महत्त्व बतलाया गया है :—

नैनं रक्षांसि न पिशाचाः सहन्ते देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत् ।
यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः ।।

अर्थात् वीर्य की रक्षा करने वाले ब्रह्मचारो को विघ्नकारी दुष्ट-भाव और ज्वरादि पीड़ाएं तथा मांसाहारी शराबी पुरुष व दुर्बल करने हारे रोग भी नहीं दबा सकते, क्योंकि यह वीर्य रूप मूल तत्त्व इन्द्रियों में और विद्वानों में सब से पूर्व पैदा हुआ श्रेष्ठ ओज है। जो

ऊर्ध्व रेता पुरुष मुख्य प्राण में आश्रित इस हितकारी रमणीय पदार्थ शुक्र को यत्नपूर्वक धारण करता है, वह सब जीवों में अपने जीवन-काल को बहुत लम्बा कर लेता है।

इसी प्रकार अथर्ववेद के आठवें काण्ड में सूक्त ५।१४ में भी इसी मणि के महत्व का वर्णन किया गया है :—

नैनं घ्नन्त्यप्सरसो न गन्धर्वा न मर्त्याः।
सर्वा दिशो विराजति यो बिभर्तीमं मणिम्॥

जो इस मणि को धारण करता है वह इतना सामर्थ्यवान् होता है कि इसे स्त्रियां अपने प्रलोभनों से वश में नहीं कर सकतीं, अर्थात् वे भी इन्हें आसक्त करके अपनी लटाओं की लपेट में नहीं लिपटा सकतीं; और गन्धर्व राजा लोग भी अपनी कुटिल नीतियों से इसे डरा तथा डिगा नहीं सकते; अर्थात् चक्रवर्ती अन्यायी सम्राट् के सामने भी यह झुक नहीं सकता, साधारण मनुष्य तो इसे मार ही नहीं सकते, मणि से यह सब दिशाओं में अपने यश व तेज से चमक उठता है।

स इद् व्याघ्रो भवत्यथो सिंहो अथो वृषा।
अथो स पत्नकर्शनो यो बिभर्तीमं मणिम्॥

तात्पर्य यह है कि ब्रह्मचारी बाघ के समान पराक्रमी हो जाता है। सिंह के समान शक्तिशाली, तथा बैल के समान राष्ट्र का भार वहन करने में समर्थ हो जाता है। और सब से महत्त्व की बात यह है कि वह मणि वाला ब्रह्मचारी अपने शत्रुओं को पराजित करने वाला हो जाता है। जो इस मणि का रक्षक है।

मणि वाला ब्रह्मचारी कह उठता है—

"अजैषं सर्वाः पृतना विमृधो हन्मि रक्षसः

"मैं सब शत्रुओं को जीत सकता हूं, और सब राक्षसों को मार सकता हूं" क्योंकि—

"अयमिद वै प्रतीवर्त ओजस्वान् संजयोमणिः"।

यह शिरोमणि पुरुष शत्रुओं को पराजित करने में समर्थ होकर सदा विजयी होता है।

वेद में जहां ब्रह्मचर्य साधना अथवा मणिरक्षा का उपदेश दिया गया है, वहां पर साथ में "हिरण्य" शब्द भी बहुत ही प्रयोग किया गया है।

अथर्ववेद के पहले ही काण्ड में तथा सूक्त ३५।१ में दीर्घ जीवन का उपदेश देता हुआ आचार्य अपने शिष्य से कहता है—

यदाबध्नन् दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः।
तत्ते बध्नान्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वायशत शारदाय॥

दक्षरूप आत्मा के आश्रय पर रहने वाले योगी लोग शुभ संकल्प वाले होकर, सैंकड़ों बल सामर्थ्यों और आयु के शतवर्षों तक जीवे हारे देह के लिए "हिरण्यं यत् आबध्नन्" हितकारी और रमणीय जिस वीर्य को विषयों में नष्ट न कर उसकी रक्षा करते हैं, उसको मैं आचार्य तुझ शिष्य के लिए आयु, तेज, बल और सौ वर्षों तक के लम्बे दीर्घ जीवन के लिए अपने अधीन व्रत में बांधता हूं।

वैदिक संस्कृति कितनी उत्तम सभ्य संस्कृति है कि जब बालक आठवें वर्ष का हो जाता है तो उसके माता-पिता उसे गुरु के पास ले जाते हैं और वहां गुरुकुल में जाकर गुरुवर से कहते थे—

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजं।
यथेह पुरुषोऽसत्। यजुर्वेद

अर्थात् हे आचार्य देव! इस कुमार को गर्भ में अर्थात् सान्निध्य में रख लीजिए, जिससे यह मनुष्य बन जावे। वे उसे अपने पास रखते थे और ब्रह्मचर्य के विषय में प्रथम ही उपदेश देते थे।

"दक्षमाणो बिभरत् हिरण्यम्"

ब्रह्मचारी बल, शौर्य में वृद्धि करता हुआ उस "हिरण्यं" वीर्य को धारण करे।

अथर्ववेद के नवें काण्ड में मधुकशा ब्रह्मशक्ति का वर्णन करते हुए जिसमें कि प्रजापति परमेश्वर द्वारा सृष्टि रचना का प्रतिपादन किया गया है, उसके सूक्त १।२१ में भी "हिरण्य" के विषय में मन्त्र में कहा गया है—

"पृथिवी दण्डोऽन्तरिक्षं गर्भो द्यौः कशा विद्युत् प्रकशो हिरण्ययो बिन्दुः।

प्रजापति परमेश्वर का दमन करने का साधन पृथिवी है, क्योंकि सब प्राणी इस पर कर्म करते और फल भोगते हैं। अन्तरिक्ष गर्भ हैं, इसके भीतर समस्त लोक रहते हैं। द्यौ-सूर्य इस संसार की संचालिका शक्ति है। बिजली उत्तम चाबुक या प्रेरक बल है। "हिरण्यय बिन्दुः" तैजस् सूर्य "नैबुला" आदि पदार्थ उसके वीर्य के बिन्दु हैं जिन से ब्रह्माण्ड सृष्टि मानो उत्पन्न हो रही है।

"त्रेधा जातं जन्मनेदं हिरण्यमग्नेरेकं प्रियतमं बभूव।
सोमस्यैकं हिंसितस्य परापतत्। अथर्व-२८।६
आपामेकं वेधसां रेत आहुस्तत् ते हिरण्यं त्रिवृदस्त्वायुषे।

यह सुवर्ण जन्म से, स्वरूप से ही तीन प्रकार से उत्पन्न हुआ है। यह तीनों प्रकार का ही मनुष्यों की आयु का बढ़ाने वाला होता है यथा अग्नि में भस्म करने से सुवर्णादि भस्म तैयार होते हैं जिन से मनुष्यों का स्वास्थ्य उत्तम होकर मनुष्य जीवन सफल बन जाता है। दूसरा औषधियों का रस भी हिरण्य ही कहलाता है क्योंकि वह भी मनुष्य के लिए हित एवं रमणीय पदार्थ होता है तीसरा मनुष्य शरीर में वीर्य भी हिरण्य कहलाता है। ये तीनों ही आयु बढ़ाने वाले हुए।

वेद में वीर्य को हिरण्य कहना बड़े ही महत्त्व की बात है, इस में बड़ा ही रहस्य छिपा है सोने को भी जहां हिरण्य कहा है उसका भाव यह है कि सोने को जर नहीं लगता है, वह अग्नि में तपाने से खरा चमकने वाला बन जाता है। अग्नि ही सोने की परीक्षा है। वह उस परीक्षा से कभी भी नहीं घबराता है। ठीक इसी प्रकार

ब्रह्मचारी भी हिरण्य अर्थात् वीर्य की रक्षा करता हुआ कभी भी रोगों से पीड़ित नहीं होता है, वह संकटों से कभी नहीं घबराता है। उसे कामिनी और कंचन कभी भी चलायमान नहीं कर सकते। गुरुकुल में वेदादि विद्या अपने ब्रह्मचारी गुरु से पढ़कर जिस समय वह संसार के कार्य क्षेत्र में उतरता है तब उसे दुनियां के लोग देखने के लिए आते हैं और कहते हैं—

युवा सुवासा परिवीत आगात् स उ श्रेयात् भवति जायमानः।

यह जवान पवित्र वेषधारी, यज्ञोपवीत वाला ब्रह्मचारी आ रहा है। यह निश्चय से ब्रह्मचर्य से पवित्र है।

ऐसा पवित्र ब्रह्मचारी जिस समय गृहस्थ में प्रवेश भी करे तो भी इसे अन्य स्त्रियां अपने एक पत्नी व्रत से पतित नहीं कर सकती। अथर्ववेद का चतुर्थ काण्ड सूक्त ३४।२ में पढ़िये:—

"अनास्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः शुचय शुचिमपि यन्ति लोकम्

नैषां शिश्नं प्र दहति जातवेदाः स्वर्गे लोके बहु स्त्रैणमेषाम् ।।

प्रजापति=परमात्मा के उपासक, ज्ञान प्राप्त करने वाले ब्रह्मचारी ऐसे होते हैं—अनास्था=खूब मोटे ताजे, बलिष्ठ हों, उनकी हड्डियां दीखें नहीं, पूताः=आचार से वे पवित्र हों, पवनेन शुद्धाः=प्राणायाम क्रिया द्वारा शुद्ध हों, शुचयः=विचार से पवित्र हों, शुचिं लोकं=शुद्ध लोक अर्थात्—गृहस्थ लोक को, अपि यन्ति=प्राप्त होते हैं, जातवेदाः=ब्रह्मचर्यावस्था में प्राप्त ज्ञान या परमात्माग्नि का ध्यान एषां=इनके, शिश्नम्— कामेन्द्रिय को, न दहति=दग्ध नहीं करता अर्थात् इन्हें विषय-वासना नहीं सताती। स्वर्गे लोके=चाहे गृहस्थ रूप स्वर्ग लोक में, एषां=इनके आसपास, बहुस्त्रैणम्=बहुत सम्बन्धों की स्त्रियां भी रहती हों।

भाव यह है कि ब्रह्मचर्यावस्था में आचार-विचार को पवित्र करके ब्रह्मचारी गृहस्थ में प्रवेश करता है। वह इस आश्रम को स्वर्ग धाम बना देता है। ब्रह्मचर्यावस्था में प्राप्त ज्ञान के प्रताप से अपने

आपको इस आश्रम में दाग नहीं होने देता, चाहे उसके चारों ओर गृहआश्रम में बहनें, माता, चाची, चचेरी बहन, पुत्र-वधू आदि नाना स्त्रियां विद्यमान भी हों। क्योंकि वे परमात्मा के विश्वासी होते हैं। अतएव—

विष्टारिणं ओदनं ये पचन्ति नेनान् यमः परिमुष्णाति रेतः। सू ३४।५

जो उस महान विश्वव्यापी, प्रजापति परमेश्वर का हृदय से विश्वास या परिपाक करते हैं, ऐसे ब्रह्मचारियों के वीर्य या शक्ति सामर्थ्य को वह संसार का व्यवस्थापक, नियामक परमात्मा न परिमुष्णाति—हरण नहीं करता है। परमात्मा की कृपा से मनुष्य बुरे विचारों से मुक्ति पा जाता है। और वह गृहस्थी भी ब्रह्मचारी होता हुआ अपने जीवन को सफल कर जाता है।

आजीवन ब्रह्मचारी

इसके अतिरिक्त जो आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता है उसका तो कहना ही क्या है? पढ़िये ऋग्वेद का अष्टक, प्रथम अध्याय, दशम मण्डल ब्रह्मचारी कह रहा है

"अहं तदासु धारयं यदासु न देवश्चन त्वष्टाधारयद्रुशत्।
स्पार्हं गवामूधःसु वक्षणस्वा मधोर्मधु श्वात्र्यं सोममाशिरम्।

मैंने इन नाड़ियों में ऐसा रस धारण कर लिया है, जिसे कोई शिल्पी भी धारण नहीं करा सकता, जैसे गौओं के थनों में दूध रहता है और जिस प्रकार नदियों में वेग से बहने वाला जल होता है, उसी प्रकार मैंने भी इन निरन्तर प्रवाहित होने वाली नाड़ियों में अति स्पृहणीय मधु से अधिक मधु, नाड़ियों में अधिक वेग से दौड़ने वाला, सोमं—वीर्य को आशिरम्—जोकि इस शरीर का आश्रम तथा आधार है मैंने अपने शरीर में पूर्ण रक्षा के साथ धारण कर लिया है।

इस मन्त्र में सोम वीर्य को कहा गया है; क्योंकि वही शरीर का सहारा है। उसके बिना शरीर काम नहीं दे सकता, मनुष्य खोखला

हो जाता है। मस्तिष्क नष्ट हो जाता है, कुछ याद नहीं रहता। दीन-हीन, बलहीन होकर वह कंगाल ही हो जाता है। उसके पास कुछ भी नहीं रहता है रहता है तो केवल मात्र पछतावा।

और जिसने सोमपान अर्थात् ब्रह्मचर्य पालन किया है वह तो मौत को भी जीत लेता है, वह बड़ा हिम्मती, उत्साही वीर विजेता बन जाता है। और वह ब्रह्मचारी बड़े उत्साह के साथ कह उठता है

"हन्ताहं पृथिवीमिमां निदधानीह वेह वा।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥ ऋग्वेद अ० १० । सू. ११६।१२.

आज तो ऐसा जी चाहता है कि इस धरती को इधर से उठाकर उधर टेक दूं, उधर से उठाकर इधर फेंक दूं क्योंकि मैंने सोमपान कर लिया है। ऐतरेय उपनिषद् में आया है रेतो वै सोम-अर्थात् वीर्य ही सोम है।

" न हि मे अक्षिपच्चनाच्छान्त्सुः पंच कृष्टयः।
कुवित्सोमस्यापामिति। ऋग्वेद दशम मण्डल।

पांचों विषयों में खेंचने वाली पांचों इद्रियां भी मेरी आंखों को पल भर भी नहीं लुभा सकती। क्योंकि मैंने खूब सर्वोत्पादक, ईश्वर का ज्ञानानन्द रस पान कर लिया है।

नहि मे रोदसी उभे अन्यं पक्षं च न प्रति।
कुवित्सोमस्यापामिति।

सूर्य और भूमि दोनों मेरे एक पक्ष अर्थात् बाजू के बराबर भी नहीं है क्योंकि मैं बहुत अधिक वीर्य का रक्षण कर चुका हूं।

सोमरस और शराब

बहुत से पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग सोम से शराब का अभिप्राय लेते हैं। वे कहते हैं कि प्राचीन आर्य ऋषि, मुनि लोग सोमरस अर्थात् शराब पीते थे। सोमरस का शराब अर्थ है कैसे हो गया; पता नहीं, ये लोग कौन से शब्दकोष मे पढ़कर

आए हैं। इन बेचारों का दोष ही क्या है ये तो जैसा अंग्रेजों ने लिखा, वैसा ही पढ़कर कहने लग जाते हैं, आज भी भारत भर के स्कूलों में पढ़ाया जाता है—"प्राचीन आर्य लोग सोमरस—शराब पीते थे। मांस खाते थे।"

किन्तु सोम शब्द के अर्थ वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों में तथा उपनिषदों में निम्न अर्थ के द्योतक हैं—परमात्मा, श्री, राजा, प्राण, प्रजापति, गूढ़रूप अग्नि, विष्णु, वायु, सम्राट्, क्षत्रिय, वीर्य, यश, ब्राह्मण, चन्द्रमा, गाय का घी व दूध आदि-आदि सभी अर्थ प्रकरणानुसार सोम शब्द से लिये जाते हैं।

ब्रह्मचर्य से बन्धुता

ब्रह्मचारी बड़ी शोभा देता है। वह बड़ा सुन्दर होता है। उसका स्वास्थ्य दर्शनीय होता है। सभी लोग उससे मित्रता तथा बन्धुता बढ़ाने के लिए लालायित रहते हैं। इसका वर्णन करते हुए—

"यं ते श्येनश्चारूमवृकं पदाभरदरुणं मानमन्धसः।

एना वयोवि तार्यायुर्जीवस एना आगार बन्धुता॥ ऋ० ८।२।५

इस मन्त्र में श्येन ब्रह्मचारी को कहा गया है, जोकि उत्तम गति से जाने वाला पुरुष है।

वह अपने अन्दर सुन्दर, दुःख न देने वाले, तेजोयुक्त देह के निर्माण करने वाले उत्पादक वीर्यरूप, जिस अंश को ज्ञान पूर्वक आचरण द्वारा धारण करता है इससे ही दीर्घजीवन के लिए बल और आयु प्राप्त होता है। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस ब्रह्मचर्य द्वारा ही बन्धुता का तांता लग जाता है।

"यं सुपर्ण परावतः श्येनस्य पुत्र आभरत्। शतचक्रं योऽह्यो वर्तनिः॥

प्रशंसनीय गुरु का शिष्य, सौ वर्ष को आयु करने वाले वीर्यरूप सोम को धारण करता है, जोकि नाश न होने वाला जीवन तत्त्व है।

कठिन व्रत

ब्रह्मचर्य व्रत कठिन व्रत है। तलवार की तेज धार पर चलना

है किन्तु जितना कठोर है उतना ही सरल भी है। क्योंकि बाल्य-काल से ही दूर एकान्त गुरुकुल में ब्रह्मचारी के पास वेदादि शास्त्रों को पढ़कर, आचार-विचार सदाचार द्वारा इस कठोर ब्रह्मचर्य व्रत को सरल भी किया जाता है। उन्हें कामवासना, दूषित विचार नहीं सताते। क्योंकि उन्होंने इस विचार को अपने जीवन में कभी भी स्थान ही नहीं दिया। अतः ब्रह्मचर्य पालन जितना कठोर है, उतना ही सरल भी है।

सहस्व मन्यो अभिमातिमस्म रुजन् मृणन् प्रमृडन् प्रेहि शत्रून्॥

हे जीवात्मन्! अभिमान अहंकार को वश कर। क्रोध आदि शत्रुओं के बल को बार-बार तोड़, उनको दबा, पीस और आगे बढ़, विषयरूप-शत्रुओं का नाश कर, ये तेरे प्रचण्ड बल को सहन नहीं कर सकते। तू उन पर एकला वश कर लेगा।

इन्द्रियां बड़ी बलवान्

ये प्रत्येक प्राणी को हो गढ़े में डाल देती हैं। मनुस्मृति में भी इनके बारे में ऐसा ही लिखा गया है।

बलवानिन्द्रियसंग्रामो विद्वांसमपि कर्षति।

असावधानता से चलने पर ये विद्वान् को भो विषयों में खेंच लेती हैं। विषय वासनाएं मनुष्य को अन्धा कर देती हैं। नीति में भी ऐसा ही कहा गया है—

उलूको दिवा न पश्यति, रात्रौ काको न पश्यति।
अपूर्वः कोऽपि कामान्धो नक्तं दिवा न पश्यति॥

दिन में उल्लू को दिखाई नहीं देता, रात्रि के समय कौवे को नहीं दीखता, किन्तु काम के अन्धे को तो न दिन में दिखाई देता है और न रात में।

सन्त कबीर भी पांचों इन्द्रियों के वश में करने की बात कहते हुए लिखते हैं—

कबीरा सोई सूरमा जाके पांचों हाथ।
जाके पांचों बस नहीं तेहि गुरु संग न जात ।।

सूरमा का अंग ५४।

ये इन्द्रियां मनुष्यों को ही गढ़े में ढकेलती हों, केवलमात्र ऐसी बात नहीं, ये तो अन्य अबोध प्राणियों को भी अपने वश में करके मार डालती हैं। जैसे—

"कुरंगमातंग पतंग भृंगाः, मीना हताः पंचभिरेव पंच।
एकः प्रमादी स कथं न हन्यते, यः सेवते पंचभिरेव पंच ।।

(१) हिरण कान के वश में होकर मारा जाता है, क्योंकि हिरण को मारने या पकड़ने वाले उनसे कुछ दूर स्थान पर एक गढ़ा खोदकर बैठ जाते हैं, उसमें बैठकर बीन बांसुरी बजाते हैं, जिसकी मधुर तान को सुनकर हिरण मोहित होकर निकट आ जाते हैं और शिकारी उन्हें गोली से मार देते हैं। (२) इसी प्रकार हाथी को पकड़ने वाले जंगल में एक बड़ा गढ़ा खोदकर उस पर बांस की टाटी लगाकर एक कागज की हथिनि बनाकर खड़ी कर देते हैं, हाथी उसे हथिनी मानकर स्पर्श दोष से उस गहरे गढ़े में गिर जाता है, जहां से उसे मोटे रस्से बाँध कर पकड़ लेते हैं। (३) पतंग दीपक के प्रकाश में नेत्र के वश में होकर मर जाता है। (४) भौंरा नासिका के वश में होकर फूल में फंसकर मर जाता है। नासिका के वश होकर फंसे हुए भौंरे के बारे में पण्डित राज जगन्नाथ ने लिखा है !

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्,
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पंकज श्रीः।
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे,
हा हन्त, हन्त, नलिनी गज उज्जहार ।।

सूर्यास्त होने पर कमल के फूलों में फँसा भौंरा सोचने लगा, रात जायगी, सुप्रभात होगा। सूर्य उदय होगा, कमल खिल उठेगा, मैं मुक्त हो जाऊंगा, किन्तु कमल में फंसे भौंरे के ऐसा सोचते हुए

हाथियों ने जलाशय में प्रवेश किया-अफसोस ! कि कमलिनियों को तोड़ डाला । भौंरा भी बेचारा मारा गया ।

(५) मछली भी बेचारी मारी गई जीभ के वश होकर। मछली पकड़ने वाले कांटा-डोरी लेकर कांटे के ऊपर आटा लगाकर उसे पानी में फैंकते हैं, मछलियां आटे के लोभ में उसे खाने को दौड़ती हैं, कांटा उनके गले में अटक जाता है और वे पानी से बाहर खैंच ली जाती हैं ।

ये पांचों ही अबोध प्राणी एक ही इन्द्रिय के वश में होकर शिकार हुए हैं । पांचों इन्द्रियां जिस मनुष्य के पास हैं वह क्यों नहीं असंयमी होकर मारा जायगा ।

मणिरक्षा के उपाय :—

दीर्घ जीवन की प्राप्ति के लिए मणि रक्षा आवश्यक है । वेदों में तथा शास्त्रों में उसके अनेक उपाय वर्णित किए हैं । उन में सब से सुन्दर सर्वप्रथम उपाय यह है—अथर्व वेद के आठवें काण्ड के सूक्त २।११ में लिखा है—

"यत् ते नियानं रजसं मृत्यो अनवधर्ष्यम्,
पथ इमं तस्मात् रक्षन्तो ब्रह्मास्मै वर्म कृण्मसि ॥

हे मृत्यो ! जो तेरा असह्य और अजेय रजोगुण युक्त नीचे जाने का मार्ग है, उसी मार्ग से इस जीव की रक्षा करते हुए हम ब्रह्म को वर्म बनाते हैं, अर्थात् रजोगुणी विचार मनुष्य को नीचे गिराते हैं, वे मृत्यु की ओर ले जाते हैं, उन से बचने के लिए ब्रह्म परमात्मा ही कवच के समान रक्षक है ।

ब्रह्म चिन्तन ही मणिरक्षा का सर्वोत्तम उपाय है ।

जिस समय मनुष्य ब्रह्म को अपने अन्दर कवच के समान धारण कर लेता है अर्थात् परमात्मा का दृढ़ विश्वास प्राप्त कर लेता है उस समय मनुष्य को कामवासनाएँ नहीं सताती हैं ।

जैसे युद्ध के अन्दर कवच धारण करने से हथियार मार नहीं करते हैं उसी प्रकार ब्रह्म कवच के धारण करने से काम के तीर मनुष्य को नहीं लग सकते।

साधक ब्रह्मचारी को अनेक बार दुःस्वप्न बहुत सताते हैं, बुरे सपनों के नाश करने के लिए भी अथर्व वेद के सप्तम-काण्ड, सूक्त १०१।१ में ब्रह्म कवच धारण करने से स्वप्न नष्ट हो जाते हैं जैसे—

"ब्रह्माहमन्तरं कृण्वे परा स्वप्नमुखाः शुचः।"

मैं दोष और अपने बीच में पवित्र ईश्वर का स्मरण करता हूँ, इस से अशुभ संकल्पों से उत्पन्न हृदय की संताप जनक प्रवृत्तियों को दूर करता हूं। सायंकाल सोते समय ईश्वर स्मरण करके और परमात्मा से तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु की प्रार्थना करके सोने से स्वप्न-दोष आदि नहीं होते हैं।

काम-क्रोधादि अन्तः शत्रुओं को भी दूर करने का यही उपाय अथर्ववेद नवम काण्ड, सूक्त २।१६ में भी वर्णित किया गया है—

"यत्ते काम शर्म त्रिवरूथमुद्भु ब्रह्म वर्म विततमनतिव्याध्यं कृतम्।"

ब्रह्म को कवच बनाने की बात अथर्ववेद के सप्तदश काण्ड, सूक्त १।२८ में भी कही गई है—

"प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषावर्चसा च।
जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम्॥"

मैं प्रजापालक परमेश्वर के ब्रह्म, वेद ज्ञान रूप कवच से सुरक्षित और तेज के प्रकाश से युक्त होकर वृद्धावस्था तक दीर्घायु, वीर्यवान् तथा विविध ज्ञान से सम्पन्न, पुण्यकर्मा होकर संसार में विचरण करूं।

इस प्रकार चारों वेदों तथा अन्य शास्त्रों और उपनिषदों में भी ब्रह्मचर्य रक्षा का प्रथम उपाय ईश्वर भक्ति ही लिखा है। क्योंकि ब्रह्मचर्य ही ब्रह्म प्राप्ति का मुख्य साधन है। कठोपनिषद् बल्ली दो, मन्त्र पन्द्रह में भी ऐसा ही लिखा है—

"सब वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्तं पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।"

क्योंकि सब वेद, सब धर्मानुष्ठान रूप तपश्चरण, जिनका कथन और मान्य करते और जिनकी प्राप्ति की इच्छा करके ब्रह्मचर्याश्रम करते हैं उसका नाम ओम् है। अतः उसी की उपासना करनी योग्य है।

ईश्वर का सर्वव्यापक मानकर ही मनुष्य पापों से बच जाता है। पाप रहित होने से मनुष्य को आत्मिक शक्ति बढ़ जाती है। जब सर्वप्रभु व्यापक है तो पाप कहां छिप कर किया जा सकता है। अतः काम के तीरों से बचने के लिए ब्रह्म चिन्तन आवश्यक है।

मणि रक्षा का दूसरा उपाय

मणि रक्षा के लिए विवेक विचार भी सर्वोत्तम साधन है—सांख्यदर्शन के तृतीय अध्याय को समाप्त करते हुए महर्षि कपिल विवेक को ही उत्तम मानते हैं—

"विवेकान्निः शेष दुःखनिवृत्तौ कृतकृत्यता नेतरान्नेतरात्।

अर्थात् विवेक से ही सब दुष्ट वासनाएं तथा दुःख दूर होते हैं। विवेक से ही मनुष्य कृतार्थ होता है, दूसरे से नहीं।

विवेक की प्राप्ति किन साधनों से होती है, इस पर विचार करते हुए महर्षि कपिल मुनि सांख्यदर्शन के चौथे अध्याय के उन्नीसवें सूत्र में लिखते हैं—

"प्रणति ब्रह्मचर्योपसर्पणानि कृत्वा सिद्धिबहुकालात् तद्वत्।"

अर्थात् सदाचारी गुरु से नम्र रहना, व उसकी सेवा करना ब्रह्मचर्य को धारण करना, वेद पढ़ने के लिए आचार्य के पास गुरुकुल में जाना, इन्हीं कर्मों से विवेक की सिद्धि हो जाती है। जैसे कि इन्द्र को हुई थी।

विवेक को छोड़ कर जब मनुष्य भोग विषयों में फंस जाता है तब वह बड़ा दुःख पाता है। उसे शान्ति प्राप्त नहीं होती है। भोग

दुःख के कारण हैं। महर्षि इस पर भी विचार प्रकट करते हुए लिखते हैं—"न भोगात् राग शान्तिर्मुनिवत्"

अर्थात्—भोगों को पूर्ण रूप से भोगने से भी राग को शान्ति नहीं होती, जैसे सौभरि नाम वाले मुनि ने भोगों को खूब अच्छी तरह से भोगा, किन्तु उसे कुछ भी शान्ति न मिली। मृत्यु के समय सौभरि ने कहा था—

"आमृत्युतो नैव मनोरथानामन्तोऽस्ति विज्ञातमिदं मयाद्य।
मनोरथासक्तिपरस्य चित्तं न जायते वै परमार्थ सङ्गिः॥"

मुझे आज इस बात का पूरा निश्चय हो गया है कि मृत्यु तक मनोरथों का अन्त नहीं है और जो चित्त मनोरथों में लगा हुआ है उसे विवेक विचार प्राप्त नहीं होते।

मणि रक्षा का तीसरा उपाय

कठोर दण्ड व्यवस्था—

व्यभिचारी-स्त्री पुरुषों को कठोर दण्ड राजा की ओर से मिलना चाहिए। व्यभिचारियों के लिए वेद ने कठोर दण्ड निर्धारित किया है—अथर्ववेद के छठे काण्ड, सूक्त १३८।२ में लिखा है—

"अथास्येन्द्रो ग्रावभ्यामुभे भिनत्त्वाण्ड्यौ।"

अर्थात् राजा कामी पुरुषों के दोनों अण्डकोशों को पत्थरों से तुड़वा देवे।

व्यभिचारियों के लिए वेद में अन्यस्थलों पर भी इस से भी अधिक कठोर दण्ड का किया गया है।

राजर्षि मनु ने भी दुष्ट व्यभिचारियों के लिए इतने ही कठोर दण्ड की व्यवस्था की है—महर्षि दयानन्द जी महाराज ने सत्यार्थ-प्रकाश के छठे समुल्लास में मनुस्मृति के दण्ड विधायक श्लोकों को प्रमाण देते हुए लिखा है—

"भर्त्तारं लङ्घयेद्या स्त्री स्वज्ञातिगुणदर्पिता।
तां श्वभिः खादयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते ।।

जो स्त्री अपनी जाति गुण के घमण्ड से पति को छोड़ व्यभिचार करे उस को बहुत स्त्री और पुरुषों के सामने जीती हुई को कुत्तों से राजा कटवा कर मरवा डाले।

"पुमांसं दाहयेत् पापं शयने तप्त आयसे।
अभ्यादध्युश्च काष्ठानि तत्रदह्येत पापकृत् ।।

उसी प्रकार अपनी स्त्री को छोड़ के परस्त्री वा वेश्यागमन करे उस पापी को लोहे के पलंग को अग्नि से तपा के लाल कर उस पर सुला के जीते को बहुत पुरुषों के सम्मुख भस्म कर देवे।

जब देश में कठोर दण्ड व्यवस्था थी, तब कोई स्त्री-पुरुष व्यभिचारी नहीं होता था, यहाँ के राजा लोग निर्भयता पूर्वक घोषणा किया करते थे।

"न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतः ।।

कश्मीर प्रदेश के महाराजा अश्वपति ने उद्दालक आदि मुनियों के सामने उद्घोषणा की थी कि हे मुनियो ! मेरे राज्य में कोई चोर नहीं है, न कोई कंजूस तथा शराबी भी कोई नहीं है। कोई पुरुष ऐसा नहीं है जो यज्ञ न करता हो, कोई पुरुष अनपढ़ भी नहीं है। जब कोई व्यभिचारी पुरुष ही नहीं है तो व्यभिचारिणी स्त्री कहां से हो ?

"अथैषामिन्द्रो वज्रेणापि शीर्षाणि वृश्चतु ।

जो लोग उपदेश से न मानते हों, राजा लोग उन्हें जेलखाने में लाकर डाल दें, व्यभिचारियों के तो शिरों को तलवार से काट डालें, उन्हें प्राण-दण्ड दें। क्योंकि व्यभिचार सबसे बड़ा अपराध है। इस से देश की सन्तति के ऊपर बुरा प्रभाव पड़ता है। समाज सर्वनाश

के पथ पर चल पड़ता है। उसे रोकने के लिए सख्त सजा अत्यन्त आवश्यक है।

दण्ड: शास्ति प्रजा सर्वा: दण्ड एवाभिरक्षति।
दण्ड: सुप्तेषु जागर्त्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधा:।

अर्थात् दण्ड से ही प्रजा पर शासन किया जाता है। दण्ड ही प्रजा का रक्षक है। दण्ड ही सोते हुओं को जगाने वाला है। विद्वानों ने दण्ड को ही धर्म कहा है।

अत: देश में व्यभिचार को रोकने के लिए तथा सदाचार का प्रचार करने के लिए कठोर दण्ड-विधान होना चाहिए।

किन्तु आज तो सरकार ही योजनाएं बनानकर व्यभिचार का प्रचार कर रही हैं। "परिवार नियोजन" के नाम पर कितना रुपया पानी की तरह बहाया जा रहा है। तथा इसके द्वारा व्यभिचार को भी कितना बढ़ावा मिल रहा है, यह सब कुछ सरकारों के द्वारा ही हो रहा है। परिवार-नियोजन के विषय में विस्तार से लिखना अनुपयुक्त है।

इसी प्रकार सिनेमा के गन्दे फोटो व गन्दे गाने भी देश को व्यभिचार की ओर ढकेल रहे हैं, ये भी बन्द होने चाहिए। ऐसे ही लड़के और लड़कियों की सहशिक्षा भी व्यभिचार को अग्नि में घी का काम कर रही है।

इसे बन्द करके लड़के, लड़कियों के विद्यालय भी पृथक्-पृथक् होने चाहिए, जिस से वे अच्छे सदाचारी नागरिक बनकर देश का उत्थान कर सकें।

विद्यालयों में पढ़ाया जाने वाला साहित्य भी श्रेष्ठ होना चाहिए, विद्यार्थियों पर इसका ही सब से अधिक प्रभाव पड़ता है। पढ़ाने वाले अध्यापक भी सदाचारी हों, तभी देश की सन्तान सुधर सकती है। ये सदाचार तथा ब्रह्मचर्य रक्षा के उपाय तो सरकार ही कर सकती है।

"भर्त्तारं लङ्घयेद्या स्त्री स्वज्ञातिगुणदर्पिता।
तां श्वभिः खादयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते ।।

जो स्त्री अपनी जाति गुण के घमण्ड से पति को छोड़ व्यभिचार करे उस को बहुत स्त्री और पुरुषों के सामने जीती हुई को कुत्तों से राजा कटवा कर मरवा डाले ।

"पुमांसं दाहयेत् पापं शयने तप्त आयसे ।
अभ्यादध्युश्च काष्ठानि तत्रदह्येत पापकृत् ।।

उसी प्रकार अपनी स्त्री को छोड़ के परस्त्री वा वेश्यागमन करे उस पापी को लोहे के पलंग को अग्नि से तपा के लाल कर उस पर सुला के जीते को बहुत पुरुषों के सम्मुख भस्म कर देवे ।

जब देश में कठोर दण्ड व्यवस्था थी, तब कोई स्त्री-पुरुष व्यभिचारी नहीं होता था, यहाँ के राजा लोग निर्भयता पूर्वक घोषणा किया करते थे ।

"न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः ।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतः ।।

कश्मीर प्रदेश के महाराजा अश्वपति ने उद्दालक आदि मुनियों के सामने उद्घोषणा की थी कि हे मुनियो ! मेरे राज्य में कोई चोर नहीं है, न कोई कंजूस तथा शराबी भी कोई नहीं है। कोई पुरुष ऐसा नहीं है जो यज्ञ न करता हो, कोई पुरुष अनपढ़ भी नहीं है। जब कोई व्यभिचारी पुरुष ही नहीं है तो व्यभिचारिणी स्त्री कहां से हो ?

"अथैषामिन्द्रो वज्रेणापि शीर्षाणि वृश्चतु ।

जो लोग उपदेश से न मानते हों, राजा लोग उन्हें जेलखाने में लाकर डाल दें, व्यभिचारियों के तो शिरों को तलवार से काट डालें, उन्हें प्राण-दण्ड दें। क्योंकि व्यभिचार सबसे बड़ा अपराध है। इस से देश की सन्तति के ऊपर बुरा प्रभाव पड़ता है। समाज सर्वनाश

के पथ पर चल पड़ता है। उसे रोकने के लिए सख्त सजा अत्यन्त आवश्यक है।

दण्डः शास्ति प्रजा सर्वाः दण्ड एवाभिरक्षति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्त्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः।

अर्थात् दण्ड से ही प्रजा पर शासन किया जाता है। दण्ड ही प्रजा का रक्षक है। दण्ड ही सोते हुओं को जगाने वाला है। विद्वानों ने दण्ड को ही धर्म कहा है।

अतः देश में व्यभिचार को रोकने के लिए तथा सदाचार का प्रचार करने के लिए कठोर दण्ड-विधान होना चाहिए।

किन्तु आज तो सरकार ही योजनाएं बनानकर व्यभिचार का प्रचार कर रही हैं। "परिवार नियोजन" के नाम पर कितना रुपया पानी की तरह बहाया जा रहा है। तथा इसके द्वारा व्यभिचार को भी कितना बढ़ावा मिल रहा है, यह सब कुछ सरकारों के द्वारा ही हो रहा है। परिवार-नियोजन के विषय में विस्तार से लिखना अनुपयुक्त है।

इसी प्रकार सिनेमा के गन्दे फोटो व गन्दे गाने भी देश को व्यभिचार की ओर ढकेल रहे हैं, ये भी बन्द होने चाहिए। ऐसे ही लड़के और लड़कियों की सहशिक्षा भी व्यभिचार को अग्नि में घी का काम कर रही है।

इसे बन्द करके लड़के, लड़कियों के विद्यालय भी पृथक्-पृथक् होने चाहिए, जिस से वे अच्छे सदाचारी नागरिक बनकर देश का उत्थान कर सकें।

विद्यालयों में पढ़ाया जाने वाला साहित्य भी श्रेष्ठ होना चाहिए, विद्यार्थियों पर इसका ही सब से अधिक प्रभाव पड़ता है। पढ़ाने वाले अध्यापक भी सदाचारी हों, तभी देश की सन्तान सुधर सकती है। ये सदाचार तथा ब्रह्मचर्य रक्षा के उपाय तो सरकार ही कर सकती है।

मणि रक्षा का चौथा उपाय

भोजन तथा व्यायाम

मनुष्य का भोजन सात्विक होना चाहिए। भोजन की शुद्धि से ही मनुष्य के विचार भी शुद्ध हो जाते हैं। क्योंकि "जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन" के अनुसार घी, दूध, चावल, गेहूं, फल आदि का सेवन करना चाहिए।

चाय, शराब, सिगरेट, बीड़ी का सेवन ब्रह्मचर्य प्रेमियों को सर्वथा त्याग देना चाहिए।

व्यायाम प्रत्येक मनुष्य के लिए आवश्यक है।

व्यायाम के विषय में जब मैंने भारत केसरी पहलवान् मास्टर चन्दगीराम जी से पूछा तो उन्होंने व्यायाम और कुश्ती की उपयोगिता के विषय में अपने विचारों से अवगत कराते हुए बताया कि "व्यायाम केवल पहलवानों के लिए ही नहीं, प्रत्युत् प्रत्येक स्वास्थ्य-कामी व्यक्ति के लिए उपयोगी है। किसी भी प्रकार का व्यायाम प्रारम्भ करते ही शारीरिक निर्बलता दूर होने लगती है, छोटी-मोटी बिमारियां दूर भाग खड़ी होती हैं, शरीर के समस्त अंगों में धीरे-धीरे शक्ति का संचार होने लगता है तथा अपने अस्तित्व में आशा बढ़ने लगती है। कुश्ती का अभ्यास करने से स्वाभिमान एवं आत्म-विश्वास की वृद्धि होती है। शरीर सुन्दर, सुघठित, सबल एवं लचीला बनता है तथा कुश्ती जीतने पर "सार्वजनिक प्रतिष्ठा" मिलने से आत्म-सन्तुष्टि होती है। इसके अतिरिक्त एक और महत्वपूर्ण बात का मैंने अनुभव किया है, वह यह कि जिसे भी पसीने से नहाने की आदत पड़ जाती है वह चारित्रिक धरातल पर उन्नत हो जाता है।

प्रतिदिन के व्यायाम के विषय में पूछने पर भारत केसरी ने बताया कि मैं डेढ़ हजार दण्ड, एक हजार बैठक, तथा अन्य हाथ के व्यायाम जैसे लोहे की जंजीरों में वजन बांधकर घन्टे तक भर उठाना,

घूमाना, मोर चाल, दौड़ तथा अखाड़े में पहलवानों के साथ कुश्ती का अभ्यास करना आदि-आदि ।

जब मैंने भोजन के बारे में पूछा तो उन्होंने बताया—कि मैं चार फुलके, साक-सब्जी, फल, तथा चार सेर दूध, पाव भर बदाम, पाव भर घी आदि लेता हूं ।

शराब, सिगरेट मांस अण्डे का सेवन तो मैं कभी भी नहीं करता हूं। और सबसे बड़ी रहस्य की बात यह है कि मैं ब्रह्मचर्य का पालन करता हूं, इसी कारण ही मैं "भारत-केसरी" बन सका हूं ।

अतः प्रत्येक साधक को सात्विक भोजन तथा शक्ति व समय के अनुसार व्यायाम करना चाहिए ।

सन् १९६९ में इंग्लैण्ड से एक शिष्टमण्डल भारत आया था, मण्डल के एक प्रतिनिधि से स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रश्न पत्रकारों ने पूछे थे—प्रतिनिधि ने उत्तर देते हुए बताया –

१. आज तक भी मैंने कभी भी शराब को छूआ तक नहीं ।
२. सूरज ने मुझे बिस्तर पर नहीं पाया, अर्थात् सूर्योदय से पहले ही मैं उठ जाता हूं ।
३. मैं मानसिक क्रिया तथा शारीरिक क्रिया दोनों को ही समान-रूप से महत्व देता है ।
४. मैं सारे जीवन में शाकाहारी रहा हूं ।
५. भगवान् में और अच्छे काम में मेरा सदैव विश्वास रहा है ।
६. योगासन मेरा जीवन का आवश्यक अंग है ।

कृतज्ञता प्रकाशनः—

इस "चरित्ररक्षामणि" पुस्तक के सम्पादन में हरयाणा प्रान्त के प्रसिद्ध गुरुकुल विद्यापीठ हरयाणा भैंसवाल कलां, जिला रोहतक के महाविद्यालय विभाग के आचार्य श्री पण्डित विद्यानिधि जी शास्त्री, वेद व्याकरणाचार्य से बड़ी सहायता मिली है। उन्होंने इसके श्लोकों का संशोधन तथा परिवर्धन आदि करके मेरे ऊपर बड़ी

कृपा की है। उनके प्रति किन शब्दों में कृतज्ञता प्रकट करूं, मेरी समझ में ही नहीं आता। वे मेरे गुरु हैं, मैं उनका शिष्य हूं, अतः अपने गुरु के प्रति कृतज्ञता प्रकट करके उनके चरणों में शिर झुकाता हूं। इनके अतिरिक्त गुरु देव पूज्य विद्वत् शिरोमणि श्री पं० जगदेवसिंह जी "सिद्धान्ती" का अतीव आभारी रहूंगा, जिन्होंने मेरे जीवन के प्रत्येक क्षण में व्यावहारिक मार्ग दर्शन किया है। जब मैंने उन्हें इस पुस्तक की पाण्डु लिपि दिखाई तो वे बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने इसे प्रकाशित करने में बड़ी प्रेरणा दी। उनकी प्रेरणा से ही श्री पं० राजपाल जी शास्त्री प्रकाशक ने इसे प्रकाशित करने का व्ययभार आदि अपने ऊपर लेकर मुझे अनुगृहीत किया है, मैं इन दोनों ही पूज्य विद्वानों का आजीवन आभारी रहूंगा।

परमात्मा करे कि देश-विदेश के सभी मानव "चरित्ररक्षामणि" को हृदय से धारण करें और जीवन में सभी, सुख, शान्ति को प्राप्त करें। यही प्रभु से प्रार्थना है।

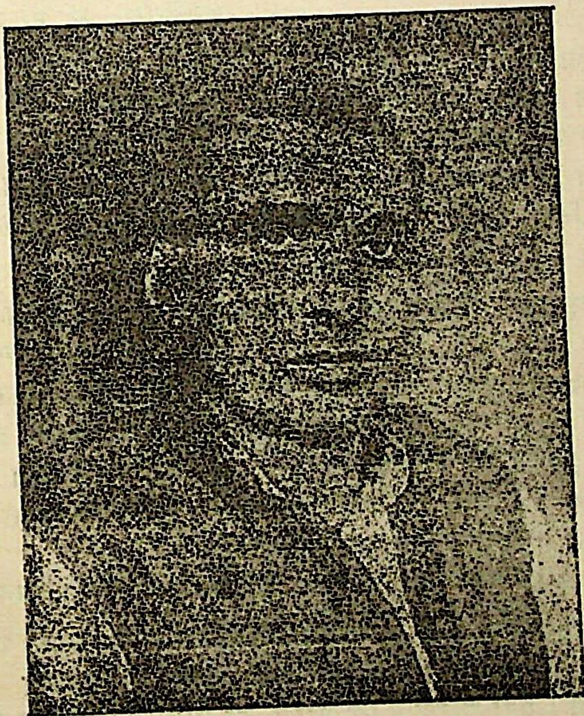
—सुखदेव
शास्त्री, सिद्धान्तवाचस्पति

दयानन्द मठ, रोहतक
२३-३-७०



विराट् प्रिंटिंग ऐजेन्सी द्वारा, सम्राट् प्रेस, देहली-६

खण्ड-काव्य ग्रन्थ के रचयिता :—



श्री सुखदेव जी शास्त्री

सत्साहित्य की आवश्यकता

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ।।

मनुस्मृति—अ. २, श्लोक-१७

चिरकाल से यह कामना बनी हुई थी कि कोई संस्कृत श्लोकों में नवीन ग्रन्थ प्रकाशित किया जावे । इसी चर्चा को अकस्मात् आदरणीय श्री सुखदेव जी शास्त्री से सम्पर्क हुआ । तभी सब वार्तालाप निश्चित हो गया और श्री शास्त्री जी ने अत्यन्त प्रसन्नता से स्वीकृति दी । परिणाम स्वरूप यह खण्ड-काव्य ग्रन्थ आप के हाथों में प्रस्तुत है।

वास्तव में किसी देश की महानता उसके साहित्य की गरिमा पर ही निर्भर करती है । देश का प्रत्येक व्यक्ति अपनी मनोवृत्ति के अनुसार ही अपने-अपने कार्यों में रत रहते हैं । कार्य की सुचारूता अथवा उसकी उपेक्षा मानव की आन्तरिक प्रेरणा पर ही निर्भर करती है और वह प्रेरणा उसके मन पर प्रतिक्षण पड़ने वाले संस्कारों से ही उद्भूत होती है; और वे संस्कार उसके व्यक्तिगत रुचि के उत्पादक साहित्य पर आधारित होते हैं ।

आज प्रत्येक को यह कटु-सत्य निस्संकोच स्वीकार करना पड़ेगा कि मानव-मन की आधार-शिला अर्थात् (बाल्यावस्था) की मनः स्थिति को पुष्ट एवं परिमार्जित करने वाले साहित्य का नितान्त अभाव है । यही कारण है कि भारत की सामाजिक एवं राजनैतिक दशा सुधार के सम्पूर्ण साधनों के हुए भी शोचनीय ही होती जा रही है । यदि भारत ने उधर उपेक्षावृति बरती तो उसका नैतिक, सामाजिक एवं बौद्धिक पतन अवश्यंभावी है ।

इन्हीं सब दृष्टिकोणों को ध्यान में रखते हुए इस काव्य-ग्रन्थ को प्रकाशित किया गया है। यह रचना एक मौलिक रचना है। इस ग्रन्थ में सभी बात मत-मतान्तरों को ध्यान में रखते हुए सदाचार एवं नैतिकता का प्रतिपादन किया गया है। आने वाली सन्तति के सामने एक आदर्श प्रस्तुत होगा। आशा करता हूं कि प्रस्तुत ग्रन्थ विद्वानों द्वारा अवश्य ही प्रशंसा-पात्र बनेगा।

भारत-सरकार द्वारा प्रचलित परिवार-नियोजन योजना देश के लिए भविष्य में अत्यन्त हानिप्रद सिद्ध होगी। जिस योजना पर आज सरकार पानी की तरह धन नष्ट कर रही है, यदि वही सरकार मानव-निर्माण के कारखाने गुरुकुलों के द्वारा संयम की शिक्षा एवं साहित्य प्रसारित करती तो अवश्य ही चिरस्थायी लाभ होता। गन्दे साहित्य पर प्रतिबन्ध होना चाहिए तभी कृत्रिमता, दुष्प्रवृत्ति और अनैतिकता नष्ट होगी। यही सब इस काव्य-ग्रन्थ में कवि ने दर्शाया है। लेखक स्वयं सदाचारी होने के नाते इतना उच्च आदर्श उपस्थित कर सका है।

अन्धकार है वहाँ जहाँ आदित्य नहीं।
है मुर्दा वह देश जहाँ साहित्य नहीं॥

—राजपालसिंह शास्त्री
अध्यक्ष
मधुर-प्रकाशन

दिनांक २३-३-७०
होलिकोत्सव

———

महर्षि दयानन्द जी को सादर समर्पित

(शिखरिणी वृत्तम्)

लसन्मैत्र्या स्वैरं जननिवहवैरं विरहयन्,
मुनित्वं सद्वृत्या विषयविनिवृत्या च कलयन् ।
महान् दान्तः शान्तः प्रबलबलकान्तः शुचिमना,
दयानन्दः स्वामी निगमपथगामी विजयते ।।१।।

व्याख्या—शोभन मैत्री से जनसमुदाय के वैर को स्वतन्त्र रूप से दूर करता हुआ, सुन्दर चित्तवृत्ति से और विषयों के प्रति निवृत्ति से मुनित्व को धारण करता हुआ, महान्, जितेन्द्रिय, शान्त, प्रबल बल से कमनीय, पवित्र मन वाला, श्री दयानन्द स्वामी वेदपथ का अनुगामी हुआ, सर्वत्र विजय को प्राप्त हो ।

मतध्वान्ते भ्रान्तं जगदिदमशान्तं प्रशमयन्,
असंभ्रान्तः स्वान्तं निजमथ नितान्तं नियमयन् ।
शिवं भूयोऽमूर्तं भुवनतलपूर्तं प्रकटयन्,
दयानन्दः स्वामी निगमपथगामी विजयते ।।२।।

व्याख्या—मतों के अन्धकार में भ्रान्त हुए इस अशान्त जगत् को शान्त करता हुआ, स्वयं असम्भ्रान्त अपने चित्त को सर्वथा नियम में रखता हुआ, बार-बार शिव को मूर्ति रहित तथा भुवन तल में परिपूर्ण प्रकट करता हुआ, श्री दयानन्द स्वामी वेदपथ का अनुगामी हुआ सर्वत्र विजय को प्राप्त हो ।

प्रचण्डं पाखण्डं दलयितुमखण्डं श्रुतिबलम्,
दधज्ज्यायो योगी बलवदुपयोगीत्य विकलम् ।
वपुष्पुष्टस्तुष्टः सुकृतमतिजुष्टः प्रियवचा,
दयानन्दः स्वामी निगमपथगामी विजयते ॥३॥

व्याख्या—प्रचण्ड पाखण्ड को नष्ट करने के लिए अखण्ड वेद के बल को बहुत बड़ा उपयोगी जानकर पूर्ण रूप से धारण करता हुआ, योगी, शरीर से पुष्ट, सन्तुष्ट, पवित्र विचारों से युक्त, प्रियवचन बोलने वाला, श्री दयानन्द :—

यशः संपत् काषीधिषणसम काशीस्थ विदुषः,
समस्तानप्यस्तामतनुत विहस्ता नवगणः ।
अनार्यैः सन्नार्यः सततमनिवार्यः परबलै—
दयानन्दः स्वामी निगमपथगामी विजयते ॥४॥

व्याख्या—यशरूपी सम्पत्ति का अनुगमन करने वाला, बृहस्पति के समान, समस्त काशी के विद्वानों को अकेला ही शास्त्रार्थ में परास्त तथा व्याकुल करता हुआ, अनार्य दूसरे विपक्षी दलों से कभी भी न रुकने वाला, आर्य श्री दयानन्द स्वामी—

ब्रुवन् नित्यं सत्यं समधिगतमृत्युञ्जयः पदः,
पपौ यो निःस्वार्थं शिव इव परार्थं विषमहो !
हितैषी स ह्येषामृषिरिह समेषामपि नृणां,
दयानन्दः स्वामी निगमपथगामी विजयते ॥५॥

व्याख्या—नित्य सत्य बोलता हुआ, मृत्युञ्जय पद को प्राप्त हुआ, जो निस्वार्थ भाव से शिव के समान दूसरों के लिये विष का पान करता था, इन सब मनुष्यों का हितैषी दया० :—

पुराणज्ञानज्ञानुचितं भगवज्ज्ञानविमुखान्,
उपादिक्षद् वेदं विशकलितभेदं प्रतिपदम् ।
पवित्रात्मा युक्तः सकलभयमुक्तः स भगवान्,
दयानन्दः स्वामी निगमपथगामी विजयते ॥६॥

व्याख्या—ठीक भगवान् के ज्ञान से विमुख मूर्ख पुराण जानने वाले लोगों को जिसने पद-पद पर व्याख्या सहित वेद का उपदेश दिया, वह पवित्र आत्मा योगी सब भय से मुक्त श्री दयानन्द स्वामी॰

गुणैरुच्चैः स्थानं स्वगुरुविरजानन्दमपि यः,
प्रसिद्धः सच्छिष्येष्वधिकमति शिष्ये विनयवान् ।
असौ त्यक्त्वानार्षं पठनविधिमार्षं प्रतिदिशन्,
दयानन्दः स्वामी निगमपथगामी विजयते ॥७॥

व्याख्या—जिसने ऊँचे गुणों के स्थान अपने गुरु विरजानन्द जी को भी विनय भाव में प्रसिद्ध होकर अच्छे शिष्यों में अधिक नाम पाकर अपनी योग्यता से मात कर दिया। वह अनार्ष पाठ विधि को छोड़कर आर्ष पाठ्यक्रम को प्रचलित करने वाला दयानन्द०—

तं यतिप्रवरं नत्वा सदाचार प्रवर्तकम् ।
विनीतेन मया तस्मै पुस्तिकेयं समर्प्यते ॥८॥

व्याख्या—उस सदाचार के प्रवर्तक बाल ब्रह्मचारी महर्षि प्रवर दयानन्द जी महाराज को नमस्कार करके मैं—विनय भाव से उनको यह पुस्तक समर्पित करता हूं ।

———

चरित्ररत्नामणिः

अथ प्रथमोऽध्यायः

(पथ्यानुष्टुप्)

अनादिनिधनं ब्रह्म श्वः श्रेयसकरं परम् ।
कामादि वासनाहीनं स्वाधीनानन्दमन्दिरम् ॥१॥

व्याख्या—आदि-अन्तरहित, कल्याणकारी जो परब्रह्म है। और जो—काम, क्रोध आदि वासनाओं से हीन, स्वाधीन आनन्द का धाम है।

अखण्डं ज्योतिरत्युच्चैरस्खलद् ब्रह्मवर्चसम् ।
कूटस्थं साक्षिणं नित्यं निर्द्वन्द्वं निरुपप्लवम् ॥२॥

व्याख्या—जो अति उच्च अखण्ड प्रकाशस्वरूप है। जिसका ब्रह्मतेज—कभी स्खलित नहीं होता और जो कूटस्थ, साक्षी, नित्य, निर्द्वन्द्व, उपद्रवरहित है।

अमोघवीर्यमोजस्विस्थैर्यधैर्यसमन्वितम् ।
निर्विकारमहं वन्दे परमात्मानमव्ययम् ॥३॥

व्याख्या—जिस का वीर्य अमोघ है, अप्रतिहतशक्ति है। जो ओजस्वी, स्थैर्य धैर्य से संयुक्त है। उस निर्विकार, अविनाशी परमात्मा को मैं प्रणाम करता हूं।

यदीयानुग्रहाज्जीवो वीर्यं विन्दति वन्दितम् ।
निर्विकल्पमनल्पं तं नमस्कुर्वेऽभिनन्दितम् ॥४॥

व्याख्या—जिसकी कृपा से जीव उत्तम प्रशंसितवीर्य को प्राप्त करता है। उस विकल्प रहित बहुत बड़े पूजनीय प्रभु को मैं नमस्कार करता हूं।

(तोटकं वृत्तम्)

करुणावरुणालय ! देवपितः ! सवितः ! परितः शिवमातनुयाः
सरलां विरलां विमलां सकलां सुषमां सुतमां सततं
सनुयाः ॥५॥

व्याख्या—हे करुणा के समुद्र ! सवितादेव ! पिताजी ! आप सब तरफ से हमारा कल्याण करो। सरल, अनोखी, विमल, सुन्दर शोभा का सतत दान दो।

व्रतचारिकुलं प्रथतां विपुलं निजमीप्सितमाप्तुमलं सफलम्।
भगवन् ! मघवन् ! अघवन्न भवेद् इति नम्रवचः प्रिय !
न शृणुयाः ॥६॥

व्याख्या—ब्रह्मचारियों, व्रतधारियों, वीर्यरक्षक, सदाचारियों का कुल खूब फैले। अपने अभीष्ट को प्राप्त करने में सफल हो। हे ऐश्वर्ययुक्त भगवन् ! वह कुल पाप से बचा रहे; यह हमारा प्रियनम्र-वचन आप सुनें।

स्फुटितं दुरितं त्वरितं शमयन् रमयन् परमां चरमां च रमाम्
महितं स्वहितं सुहितं नमयन् कृतवीर्यसुरक्षमलं धिनुयाः ॥७

व्याख्या—दुष्कर्म जब भी उदित हो तत्क्षण आप उसे दबा दें। परम चरम लक्ष्य जो आत्मश्री है उसमें हमें रमण कराइये। बहुत अधिक महत्त्वशाली आत्मकल्याण की ओर हमारी प्रवृत्ति हो। पूर्णरूप से वीर्यरक्षा करने वाले हमको आप पुष्टि दें।

हृदयं सदयं विनयः सनयः प्रणयः स्थितपुण्यगुणाभ्युदयः ।
वदनं सुमहः सदनं भवतान् मदनं कदनीयमदं क्षिणुयाः ॥८॥

व्याख्या—हमारा हृदय दयायुक्त हो। शिक्षा नीति से परिपूर्ण हो। पवित्र गुणों की उन्नति के लिए हम आपस में प्रेम करें। तेजस्वी चेहरा हो। आप क्षीणसामर्थ्य कामवासना के वेग को सर्वथा नष्ट कर दें।

व्रतिनां यतिनां कृतिनां निचयः स्वकृतैः सुकृतैः स्फुरतादभयः।
मुदितः फलितः समुदेतु सदा बहुशस्त्वममुष्य
यशश्चिनुयाः ॥९॥

व्याख्या—व्रती यति विद्वानों का समुदाय अभय होकर अपने पुण्य आचरणों से चमके। सदा प्रसन्न तथा निज लक्ष्य में सफल हो। आप ऐसे उक्त आप्त समाज का यश विस्तृत करें।

अयि पालकः ! चालक ! बालकजा ! प्रसमीक्ष्य विशिष्यतु
शिष्यगणे ।
क्षमतां क्षमतां दधदाशु भवान् इहता अहितास्त्रुटयोननु
याः ॥१०॥

व्याख्या—हे संसार के संचालक ! सबके पालक प्रभो ! आप कृपा करके विशेषरूप से हम बालक शिष्यों में जो बालस्वभावजन्य हानिप्रद दोष हैं उन्हें अपने सामर्थ्य से क्षमा कर दूर कीजिए।

(उपजातिः)

सद्ब्रह्मचर्याचरणान् मनुष्यः स्ववीर्यरक्षां विदधातु येन।
प्राचानपाचा किल देववाचा ग्रन्थोऽयमाचाम इवैषि तेन ॥११॥

व्याख्या—श्रेष्ठब्रह्मचर्य का पालन करके जिससे मनुष्य वीर्यरक्षा

करने में समर्थ हों, इसलिए मैंने प्राचीन पवित्र देववाणी द्वारा इस ग्रन्थ का आचमन करना इष्ट माना है। अर्थात् वीर्यरक्षा के महत्व को समझाने के लिए मैं चरित्ररक्षामणि नामक इस ग्रन्थ का पढ़ना आवश्यक समझता हूं।

वीर्यात् यशोभाति चकास्ति शोभा तनोर्विना तन्नु च कास्ति शोभा।
अतो हितः प्राणभृतां प्रणीतश्चरित्ररक्षामणिरुज्ज्वलो-ऽयम् ॥१२॥

व्याख्या—वीर्यरक्षा से यश मिलता है और शरीर को शोभा बढ़ती है। बिना वीर्य के शरीर की क्या शोभा है? इसलिए प्राणि-भाव के हित के लिए मैंने यह प्रशस्त चरित्ररक्षामणिः नामक ग्रन्थ बनाया है।

(शार्दूल विक्रीडितम्)

स्याद वीर्यातिशयान्निरामयभयं जाज्वल्यमानं जगत्
सर्वं चर्वंदखर्वगर्वमभितः कामादिवर्गं यतः।
श्रेयश्चार्यविचार्यकार्यकृदियाच्छार्दूलविक्रीडितैस्तस्मा-
देषं समुज्ज्वलन्नुदयते चारित्ररक्षामणिः ॥१३॥

व्याख्या—वीर्य के आधिक्य से समस्त जगत् देदीप्यमान् तथा भय रोग रहित हो जाता है। अपितु दुर्दान्त काम क्रोधादि षड्रिपु-वर्ग को भी चबा जाता है अर्थात् उसे जीत लेता है। सिंह समान पराक्रमों से श्रेष्ठ विचारपूर्वक कार्य करता हुआ कल्याण को प्राप्त कर लेता है। इस कारण वीर्यरक्षा को साधक यह पवित्र चरित्र-रक्षामणि पुस्तक बनाई गई है।

आसक्तिविषयेष्वपास्यतु सदा स्यान्निर्विकारं मनः
प्रीतिस्फीतिमुपैतु कान्तिरुचिता काये स्फुरेदुज्ज्वला ।
अस्तु स्वस्ति शुभं समस्त जगतां विध्वस्तदुश्चेष्टितं
शस्तं दीव्यतु हस्तमस्तकमतिन्यस्तं ह्यदः पुस्तकम् ।।१४।।

व्याख्या—विषयों में आसक्ति दूर हो। सदा निर्विकार मन हो। शुद्ध प्रेम की वृद्धि हो। शरीर में उचित कान्ति तथा शक्ति हो। समस्त जगत् को स्वस्ति (कल्याण) हो। दुराचार नष्ट हों। इस लिए यह प्रशस्त हस्त मस्तक न्यस्त पुस्तक प्रकाशित की गई है।

शारीरं बलमाप्नुवन्तु विपुलं सर्वार्थं संसाधकं
दीर्घामिन्द्रियशक्तिमप्रतिहतां शान्ति तथात्यन्तिकोम् ।
शुद्धां बुद्धिमनुत्तमामतितमामिष्टं मनोनिग्रहं
सर्वे सन्तु निरामयाः सहृदयाः स्वस्थाश्चपूर्णायुषः ।।१५।।

व्याख्या— सब लोग सर्वार्थसाधक पर्याप्त शारीरिक बल को प्राप्त हों। अप्रतिहत लम्बी इन्द्रियों की शक्ति हो, सच्ची आत्मिक शान्ति मिले। अत्युत्तम शुद्ध बुद्धि हो। अभीष्ट मन का निग्रह हो। सब रोग रहित तथा स्वस्थपूर्ण आयु भोगने वाले सहृदयजन हों।

वाङ् माधुर्यमिहोङ्गिरेत् प्रतिपदं कण्ठो भजेत् स्पष्टतां
कर्णौ संश्रृणुतां ध्वनिं स्फुटमिमे संपश्यतां चाक्षिणी ।
बाह्वोरस्तु यशः सुवीर्यमतुलं कर्मस्थिरं हस्तयोः
सस्नेहं हृदयं भवेच्च सदयं प्राणा भवन्त्वायताः ।।१६।।

व्याख्या—वाणी में मिठास हो। कण्ठ स्पष्ट हो! कान शब्दों को साफ़ सुन सकें। आंखें साफ देख सकें। भुजाओं में यश तथा अतुल बल हो। हाथों में स्थिर कर्म करने की शक्ति हो। हृदय में प्रेम हो। सब दयालु हों। प्राण दीर्घ हों।

निर्बाधं गमनं भवेच्चरणयोस्तिष्ठेत् सदोच्चं शिरः
नाभिः संनहनात् समस्तवपुषः पुष्यादभिष्याद् रुजम् ।
इत्थं सर्वमनामयं भवतु न श्रेयस्करं सुन्दरं
बाह्यं चान्तरमुज्ज्वलं प्रतिपलं देहेन्द्रियं निर्मलम् ॥१७॥

व्याख्या—दोनों पैर बाधारहित गतिकर सकें । सिर सदा ऊँचा रहे । नाभि सकल शरीर के पोषण में सन्नद्ध रहे । रोग को दबा देवे । इस प्रकार हमारा बाहर-भीतर सब देह-इन्द्रिय समूह स्वस्थ, सुन्दर, निर्मल, आनन्ददायक हों ।

कल्याणानि तनोतु नः स भगवान् आनन्ददः संततं
पुष्टिं तुष्टिमभीप्सितामविकलां सिद्धिसमृद्धिं शुभाम् ।
आयुष्मांल्लभतां जनः सफलतां सर्वत्र सत्कर्मणा
धीश्रीस्त्रीसहितः सुखी प्रमुदितः श्वः श्रेयसामास्थितः ॥१८॥

व्याख्या—ग्रानन्दप्रद भगवान् हम सबका कल्याण करें । पुष्टि तुष्टि, इष्टसिद्धि, शुभ धन मृसद्धि अविकल रूप से हमें प्रदान करें । सत्कर्म करके सब लोग सफल होते हुए पूर्ण ग्रायु को भोगें । ग्रपनी योग्यता के ग्रनुसार बुद्धि, सम्पत्ति तथा स्त्री पुत्रपौत्रादि परिवार को प्राप्त करें ग्रौर मोक्ष के लिए ग्रन्त में तैयार होवें ।

इति प्रथमोऽध्यायः

———

अथ द्वितीयोऽध्यायः

उपजाति वृत्तम्

बाल्ये विवाहो बलवीर्यनाशः
स्वार्थान्धता दुर्बलदुर्ध्यपत्यम् ।
पराश्रयत्वं व्यभिचारिता चे—
त्येतत्समस्तं जगतो विनश्येत् ॥१॥

व्याख्या—वचपन में विवाह, वलवीर्य का नाश, स्वार्थ में अन्धा होना, दुर्बल तथा दुष्ट बुद्धि सन्तान का होना, पराधीनता, व्यभिचार करना ये सब संसार से नष्ट हो जावें।

यन्मानसं देहिकमस्तिसौख्यं
तथा परब्रह्म सुखं महच्च ।
सद्ब्रह्मचर्यं किल तस्यमूलं
तद् रक्षणार्थं जनता यतेत ॥२॥

व्याख्या—जो मन और शरीर का सुख है, और जो बहुत बड़ा ब्रह्म का सुख है उसका मूल केवल ब्रह्मचर्य ही है। उस ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए जनता यत्न करे।

प्रायेण ये भारतवर्षदेशे,
वैदेशिका शासितुमिच्छवोऽस्मिन् ।
नरा कदाचारपराः समायन्
प्रासारयंस्ते व्यभिचार कर्म ॥३॥

व्याख्या—हमारे भारत देश में जो विदेशी शासक आते रहे हैं वे प्रायः दुराचारी रहे हैं, उन्हीं ने हमारे देश में यह व्यभिचार फैलाया है।

बुद्धयाविहीनाः सरुजः कुरूपाः
शरीर तेजो रहित विवर्णाः।
नार्यो नराः सम्प्रति यद्भवन्ति
वीर्यस्य नाशः खलु तत्र हेतुः ॥४॥

व्याख्या—आजकल जो बुद्धिहीन, रोगी, कुरूप, निस्तेज, शरीर से कमजोर, नर और नारी हो रहे हैं, उसका कारण वीर्यनाश है।

परःसहस्रैर्व्यभिचारकार्यैः
संवर्धितो वीर्यविनाशरोगः।
विन्दोर्विनाशात्मकघोरपापै
स्तैरेव हिन्दूजनता विनष्टाः ॥५॥

व्याख्या—हजारों प्रकार के व्यभिचार के तरीकों से यहां वीर्यनाश का रोग फैल गया है। उसके बढ़ने से तथा तत्सम्बन्धी अन्य कुकर्मों से भारत की हिन्दू जनता नष्ट हो रही है।

अहो पुरा भारतराजवर्गो
जितेन्द्रिय शान्तमना बभूव।
हा हन्त दुर्दैव वशादिदानीं
स्वसभ्यतानाशमसौविधत्ते ॥६॥

व्याख्या—देखो ! पहले इसी भारत देश के राजा लोग जितेन्द्रिय, शान्तमन वाले होते थे। किन्तु आज दुर्भाग्य से वही अपनी सभ्यता का नाश करने पर तुले हैं।

पत्नीव्रताः प्राग् अभवन् नराश्च
स्त्रियोऽपि नूनं स्वपतिव्रताश्च ।
अहेतुकः सम्प्रति वीर्यनाशो
हा भारतीया विषमा दशेयम् ॥७॥

व्याख्या—पहले पुरुष पत्नीव्रत होते थे। तथा स्त्रियां पतिव्रता होती थी। अब तो बिना कारण ही वीर्यनाश करने वाले हैं। हाय! भारत की कैसी यह विषम दशा है।

एवं विविञ्चन् मनसा शुभेन
स्वं देशमुच्चैश्चसमुन्निनीषु ।
सुधारयिष्यं श्चरितं समेषाम्
आवश्यकं ग्रन्थमिमं लिखामि ॥८॥

व्याख्या—इस प्रकार मैं शुद्ध मन से विचार करता हुआ अपने देश को उन्नत देखना चाहता हूं। सबके चरित्र को सुधारने की इच्छा से यह आवश्यक ग्रन्थ लिखता हूं।

ग्रन्थेन चानेन विनिर्मितेन
न केवलं भारतवर्ष लाभः ।
ईशप्रसादाद् भविताशुमन्ये
सम्पूर्णभूमण्डलवर्ष लाभः ॥९॥

व्याख्या—इस ग्रन्थ के बन जाने से न केवल भारत देश का ही लाभ है बल्कि सम्पूर्ण भूमण्डल का लाभ ईश्वर-कृपा से होगा, ऐसा मैं समझता हूं।

चरित्ररक्षामणिसंज्ञमेतत्
सद्ग्रन्थरत्नं मनसा विवेच्यम् ।

सुखं यतः स्यात् सकृदेव दृष्टाद्
विन्दोर्विनाशे न मनो व्रजेच्च ।।१०।।

व्याख्या—चरित्ररक्षामणि नामक इस उत्तम ग्रन्थ को आप मन से विचारपूर्वक पढ़ें। जिस से एक बार पढ़ते ही आप को सुख मिलेगा, और वीर्यनाश की तरफ आपका मन नहीं जायेगा।

भवेत् कुमारोऽप्यथवा कुमारो
योऽध्येष्यते ग्रन्थमिमं सदैव।
न तस्य तस्याश्च कुसंगदोषो
दुरात्मनां स्प्रक्ष्यति मात्रमापि ।।११।।

व्याख्या—चाहे लड़का हो, चाहे लड़की, जो इस ग्रन्थ को सदा मन से पढ़ेगा उसे कुसंग दोष कभी न होगा। दुष्ट मनुष्यों का रत्तीभर संग भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा।

यतिर्विरक्तोपि पठेद् यदेनत्
तदोय मेनोपि विनोत्स्तेऽदः।
ज्ञानस्यहेतुर्हि विराग आस्ते
सद् ब्रह्मचर्यं च विरागमूलम् ।।१२।।

व्याख्या—यदि विरक्त यतिजन भी इस ग्रन्थ को पढ़ेगा तो उसके पाप को भी यह दूर करेगा। क्योंकि ज्ञान का हेतु वैराग्य है और वैराग्य का मूल श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य है।

पठेत सदाचारयुतो गृहस्थः
तस्यापि लाभोस्तिमहाननेन
सद्ब्रह्मचर्यात् परमार्थलाभः।
स्वाथ्योन्नतिः स्याद् रुजपक्रमश्च ।।१३।।

व्याख्या—यदि आचारवान् गृहस्थ मनुष्य भी इसे पढ़ेगा तो उसे भी इससे बड़ा लाभ होगा। साथ ही स्वास्थ्य की उन्नति एवं रोगों की निवृत्ति होती है, इसमें यह सिखाया गया है।

अध्यापकैः खल्वपि राजकीयै
ग्रंन्थः सदैवादरणीय एषः।
शिक्षा सदाचारवती यतः स्यात्
सर्वस्य मूलं खलु वीर्यरक्षा ॥१४॥

व्याख्या—सरकारी अध्यापकों के लिए भी यह ग्रन्थ बड़ा उपयोगी है; इसमें बताया है कि शिक्षा सदाचार युक्त होनी चाहिए। सब सदाचारों का मूल वीर्यरक्षा है।

आजीवनं वीर्यनिधिं सुरक्ष्य
विद्यासदाचारसमन्विताः स्युः।
वैराग्ययुक्ता विचरेयुरत्र-
मनुष्यजातेरूपकार हेतोः ॥१५॥

व्याख्या—सब लोग जीवनभर वीर्य की रक्षा करके विद्या एवं सदाचार से युक्त बनें। मनुष्य जाति के उपकार के लिए पूर्ण वैराग्यवान् होकर विचरें।

जापानिलन्दनरसियन् अभिख्या
अमेरिका फ्रांस निवासिनश्च।
आष्ट्रेलिया भूमिशया विलोचा-
फगानदेशाः सपठानवृन्दाः ॥१६॥

व्याख्या—जापान, लन्दन, रूस, अमरीका, फ्रांस, आस्ट्रेलिया, विलोचिस्तान, अफगानिस्तान तथा पठान देश में रहने वाले जो लोग हैं।

ईरानवासा इटलीनिवासाः
ईराकवासाः किल मिश्रवासाः ।
पोलेण्डवासा अरबेवसन्तो,
भूटान जातौसह तिब्बतीयाः ॥१७॥

व्याख्या—ईराक, ईरान, इटली, मिश्र, पोलैण्ड, अरब, भूटान तथा तिब्बत में रहने वाले जो लोग हैं।

वर्मानिवासा अथचीनवासाः
कोलम्बकश्यामनिवासिनश्च ।
मंगोलका जावनिवासिनो वा
सिंहापुरस्था किल कोरियास्थाः ॥१८॥

व्याख्या—वर्मा, चीन, कोलम्बो, श्याम, मंगोलिया, जावा, सुमात्रा, कोरिया तथा सिंगापुर में रहने वाले जो लोग हैं।

नेटालवासाष्टरकीनिवासाः
नेपालवासा अथ भारतीयाः ।
ये न्यूजीलैण्डेनिवसन्ति मर्त्या
जर्मन् प्रदेशे च कृताधिवासाः ॥१९॥

व्याख्या—नेपाल, नेटाल, टर्की, न्यूजीलैण्ड, तथा जर्मन देश में जो भारतीय लोग रहते हैं।

याऽसौमहात्मासुकरात आसीद्
ज्ञानी ह्यरस्तूश्च स यत्र जज्ञे ।
तद्देशजाता जनताश्च सर्वाः
तत्पार्श्ववृत्ता लघवः प्रदेशाः ॥२०॥

व्याख्या—जिस देश में ज्ञानी अरस्तू तथा महात्मा सुकरात पैदा हुए हैं, वहां की सब जनता तथा तत्समीपस्थ छोटे-छोटे जो प्रदेश है।

तद् वेल्जिम्, तत्रभवाश्चलोकाः
तत् पार्श्ववासा लघवः प्रदेशाः ।
येऽनुक्तदेशाः परमात्मसृष्टौ
ते ब्रह्मचर्येणयुता भवेयुः ॥२१॥

व्याख्या—वेलजियम् तथा उसके पास वाले जो लघु प्रदेश हैं। इनके अतिरिक्त अनिर्दिष्ट सभी देश जो परमात्मा की सृष्टि में विद्यमान हैं, वे सब ब्रह्मचर्य पालन में लग जावें।

जेरूसलम् भूमि निवासिनो ये
ये चाङ्गलेया अपि सन्ति लोकाः ।
अनुक्तसंज्ञा इतरेऽपि देशाः
ते ब्रह्मचर्येणयुता भवेयुः ॥२२॥

व्याख्या—जेरूसलम् एवं इङ्गलैण्ड के लोगों के साथ अकथित देशों के लोग भी ब्रह्मचर्य पालन में लग जावें।

चरित्ररक्षामणिमेतमेते
सर्वेपि लोका मुदिताः पठेयुः ।
गत्वा पवित्रं हिमवत्प्रदेशं
कामादि शत्रोर्विजयं विदध्युः ॥२३॥

व्याख्या—ये सब लोग इस "चरित्रक्षामणि" पुस्तक को खुश होकर पढ़ें। हिमालय आदि एकान्त शुद्ध स्थान में जाकर कामादि शत्रुओं को जीतें।

सद्ग्रन्थमेनं प्रविलोक्यनूनं
देव्योऽप्यलं संस्कृतमानसाः स्युः ।

स्वजीवने त्यक्तविवाहकार्याः

कुर्युश्चरित्रोन्नयनं सदैव ।।२४।।

व्याख्या—इस उत्तम पुस्तक को पढ़कर देवियां भी पवित्र मन वाली हो जायेंगी। वे विवाह-बन्धन में न पड़कर अपने चरित्र की उन्नति में ही विशेष ध्यान देंगी।

तच् शिक्षणं शिक्षणमेव नास्ति

स्याच्चित्तचाञ्चल्यजयो न यत्र।

तज्जीवनं व्यर्थमहं नु मन्ये

यदिन्द्रियारीन् न वशीकरोति ।।२५।।

व्याख्या—मैं उस जीवन को व्यर्थ मानता हूं जिसमें चित्त की चञ्चलता को नहीं जीता गया है। वह शिक्षा, शिक्षा ही नहीं है जो इन्द्रियों को वश में करना नहीं सिखाती।

किं क्षुद्रभोगैरिह दृष्टनष्टैः

किं वा शरीरेण विनश्वरेण।

कामोपभोगादुपरम्य देव्यो

गार्गीसमाः स्युः सुलभासमा वा ।।२६।।

व्याख्या—क्षणभर में रह कर नष्ट होने वाले इन विषयों के क्षुद्रभोगों से क्या लाभ है? इस नश्वर शरीर से भी क्या है? देवियों को चाहिये कि वे गार्गी तथा सुलभा के समान कामोपभोगों से हटकर पवित्र चरित्र वाली बनें।

आजन्मकर्त्तव्यमखण्डयोगं

सर्वेन्द्रियाणां यमनं यदुक्तम्।

तस्मिन् रता भारतदेशकन्याः

समुद्धरेयुर्जननी समाजम् ॥२७॥

व्याख्या—आजन्म इन्द्रिय संयम करना सब का अखण्ड कर्त्तव्य है। उसमें निरत हुई भारत देश की कन्यायें समस्त मातृसमाज का उद्धार करें।

स्वर्गे न भूमौ न तदस्ति सौख्यं

यद्धयस्ति वीर्यस्य सुरक्षणेऽत्र।

उत्थीयतां जाग्रियतां समस्तै

र्नृणां समाजाः सहसोद्ध्रियन्ताम् ॥२८॥

व्याख्या—न वह सुख स्वर्ग में है, न भूमि में है, जो वीर्यरक्षा में है। सब उठो, जागो। मनुष्य समाज का उद्धार करो।

ऐतिह्यविद्यां गणितं च सम्यग्

विज्ञानविद्यां च मुदाधिगम्य।

अधीयतां दर्शनशास्त्रविद्या

वेदान्तविद्याऽप्यथराजनीतिः ॥२९॥

व्याख्या—सबको चाहिए कि वे इतिहास, गणित, विज्ञान, राजनीति तथा वेदान्त की विद्या को पढ़ कर पूर्ण विद्वान् बनें॥

वैराग्ययुक्तान् जगतिप्रसिद्धान्

ग्रन्था श्चरित्रोन्नयनक्षमांश्च।

प्रपठ्य नव्या विविधाश्च भाषाः

स्त्रीणां नरैरुद्ध्रियतां समाजः ॥३०॥

व्याख्या—वैराग्य युक्त, जगत्प्रसिद्ध महात्माओं के बनाये हुए चरित्र सुधार के ग्रन्थों को पढ़ें। नूतन विधि भाषाओं को सीखकर सब स्त्री-पुरुष अपने समाज की उन्नति किया करें।

इति द्वितीयोऽध्यायः

अथ तृतीयोऽध्यायः

वने निवासान् मनसो दमाच्च
पित्र्यस्वभावात् मनुजः कुलीनः।
जानन्नमूल्यं खलु वीर्यरत्नं
न स्कन्दयत्यत्र मुधा कदापि ॥१॥

व्याख्या—वन में निवास से, मन के दमन से, पिता प्राप्त स्वभाव से, उत्तम कुल के प्रभाव से मनुष्य अपने अमूल्य वीर्यरत्न को जानता हुआ उसे कभी नष्ट नहीं होने देता है।

नीचः प्रसङ्गान् मनसः प्रमादान्
पित्र्यस्वभावान् नृकपोतपोतः।
वीर्यस्य मूल्यं ह्यविदन् वराकः
तत्प्रत्यहं नाशयतीह मूढः ॥२॥

व्याख्या—किन्तु मूढ मनुष्य नीच के संग से, मन के प्रमाद से, अधम कुल के प्रभाव से कबूतर के बच्चे के समान वीर्यनाश करता रहता है। वह उस के मूल्य को नहीं जानता है।

मूर्खस्त्रियो दुर्जनसंगतिश्च
कुभोजनं चापि कुशिक्षणं च।
मुख्यानिमान् वीर्यविनाशहेतून्
विज्ञाय तेभ्यो विरमेन्मनुष्यः ॥३॥

व्याख्या—मूर्ख स्त्री, तथा दुष्टों का संग, खराब भोजन एवं खराब शिक्षा, ये मुख्य रूप से वीर्यनाश के कारण हैं। इन से मनुष्य को बचना चाहिए।

प्रीतिर्न देशे, न च यस्य जातौ
भीतिर्न लोकात् परमेश्वराच्च।
यश्चित्तवृत्तिं न निरुद्धुमीशो
भवत्यमुष्यैव चरित्रनाशः ॥४॥

व्याख्या—उसी मनुष्य के चरित्र का नाश होता है जिसको अपने देश या जाति से प्रेम नहीं। जो इस लोक तथा परमेश्वर से नहीं डरता और अपनी चित्त वृत्ति को रोकने में असमर्थ है।

यथा शरद्युल्लसतीन्दुलोको
निर्वासिनो राजति सन् यथा च।
सिंहो यथा राजति पर्वतेषु
राष्ट्रं तथा संयमि राजतीह ॥५॥

व्याख्या—जैसे शरद् ऋतु में चांद शोभा पाता है। जैसे वासना रहित विद्वान् भूषित होता है। और जैसे पहाड़ों में सिंह स्वतन्त्र विहार करता है वैसे संयम शील राजा भी यहां शोभित होता है।

कन्या यथा राजति शुद्धचित्ता
विद्वान् विरक्तश्च वने निवासी।
राजा यथा राजति नीतिशास्त्रात्
राष्ट्रं तथा संयमि राजतीह ॥६॥

व्याख्या—जैसे शुद्ध चित्त कन्या शोभित होती है। वन में रहने वाला विरक्त विद्वान्-भूषित होता है। और जैसे नीतिज्ञ राजा प्रजा

को प्राप्त होता है। वैसे संयम शील राजा का राज्य पूजित होता है।

विभाति वर्षासु यथा मयूरः
सरो यथाब्जैश्च सपुष्पगन्धैः।
सतो सती भाति यथा च योषा
राष्ट्रं तथा संयमि राजतीह ॥७॥

व्याख्या—वर्षा में जैसे मोर शोभित होता है। कमल फूल कं गन्ध से जैसे तालाब सुन्दर लगता है। स्त्री जैसे पतिव्रता रहती हुई शोभा पाती है वैसे संयमशील राजा का राज्य शोभा पाता है।

नेता चरित्रेण यथा विभाति
छात्रोपि सम्यग व्रतसेवनाच्च।
यथा यतिर्ध्यानविधूतपाप्मा
तथा व्रतान् स्त्री च पुमांश्च भातः ॥८॥

व्याख्या—जैसे सच्चरित्र नेता पूजा जाता है। सम्यग् व्रतपाल से ब्रह्मचारी शोभित होता है। ध्यान से पापरहित साधु महात्म जैसे भूषित होता है वैसे ब्रह्मचारीव्रत के पालन से स्त्री-पुरुष शोभि होते हैं

धर्मो यथा राजति धार्मिकेषु
गीता यथा चोपनिषत्सुभाति।
विद्वान् यथा राजति सत्सभायां
तथा व्रतात् स्त्री च पुमांश्चभातः ॥९॥

व्याख्या—धर्मात्मा मनुष्यों में जैसे धर्म शोभा पाता है। गीत

जैसे उपनिषदों में शोभित होती है, विद्वत्सभा में जैसे विद्वान् शोभित होता है वैसे ब्रह्मचर्यव्रत से स्त्री-पुरुष शोभित होते हैं।

हृष्येद् यथा स्वातिजलस्य बिन्दुं
पीत्वा वयश्चातक संज्ञकं तत्।
नृत्येच्च मेघाध्वनिना मयूरः
तथा व्रतात् स्त्री च पुमांश्च भातः ॥१०॥

व्याख्या—जैसे स्वाति नक्षत्र के जल की बून्द पीकर चातक खुश होता है। मेघ की ध्वनि सुनकर मोर प्रसन्न होता है वैसे ब्रह्मचर्यव्रत से स्त्री-पुरुष शोभित होते हैं।

सद्ब्रह्मचर्येण यथेह यज्ञो
विभाति साध्वाचरिताच्च देशः।
जीवो यथा ब्रह्मगतो विभाति
तथा व्रतात् स्त्री च पुमांश्च भातः ॥११॥

व्याख्या—जैसे श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य से यज्ञ की शोभा है। सदाचार से देश भूषित होता है। ब्रह्मनिष्ठ जीव जैसे शोभा पाता है। वैसे ब्रह्मचर्य व्रत से स्त्री-पुरुष शोभित होते हैं।

देशो यथा राजति सभ्यलोकैः
युद्धांगणं सैनिक वीरवृन्दैः!
फलैर्यथा चोपवनं विभाति
राष्ट्रं तथा संयमि राजतीह ॥१२॥

व्याख्या—सभ्य लोगों से जैसे राष्ट्र की शोभा है। वीर सैनिकों से समरांगण शोभा पाता है। फलों से बगीचे की शोभा है। वैसे संयमशील राजा का राज्य शोभित होता है।

यथा विरक्तिस्तपसा विभाति,
तपो यथा भाति तपस्विना च ।
नेतारमासाद्य यथा समाज,
राष्ट्रं तथा संयमि राजतीह ॥१३॥

व्याख्या—जैसे तप से वैराग्य की शोभा है । तपस्वी से तप की शोभा है । नेता से समाज की शोभा है वैसे संयम शील राजा से राज्य की शोभा है ।

वसन्तमासाद्य यथैव वृक्षाः,
विभान्ति चेन्दोः किरणैः सरांसि,
ज्ञानेन योगीव विभाति भूयश्,
छात्रोऽपि निर्मैथुनवासनः सन् ॥१४॥

व्याख्या—जैसे वसन्त में वृक्ष शोभित होते हैं । चन्द्रकिरणों से तालाब तथा ज्ञान से योगी शोभा पाता है । वैसे भोग वासना रहित छात्र भी शोभा पाता है ।

गङ्गा यथा चन्द्रिकया विभाति,
मनः पुनः सत्त्व गुण प्रवृद्धया ।
पूर्णेन्दुना भाति यथा नभश्च,
सद् ब्रह्मचर्येण तथैव विद्वान् ॥१५॥

व्याख्या—जसे चांदनी से गंगा, सत्त्वगुण के बाहुल्य से मन पूर्णिमा के चांद से तालाब शोभित होते हैं वैसे ब्रह्मचर्य से विद्वान् शोभा पाता है ।

वीर्ये शमोऽस्तीह दमश्चवीर्ये
वीर्ये तपोऽस्तीह तथा समाधिः,

वीर्ये सुविद्यास्ति तथा स्वपत्यं
वीर्यं विना सर्वदिगान्ध्यमेव ।।१६।।

व्याख्या—वीर्य में ही शम है। वीर्य में ही दम है। वीर्य में ही तप तथा समाधि है। वीर्य में ही शुभ विद्या और उत्तम सन्तान है। वीर्य के बिना सब दिशाओं में अन्धकार है।

शुक्रेण शुक्रं हि तदेव लक्ष्यं,
न यत्र शोको न जरा न मृत्युः।
शुक्रस्य रक्षा हृदये निधेया
तामन्तरा सर्वसुखस्य नाशः ।।१७।।

व्याख्या—निश्चय से वीर्यरक्षा ही मनुष्य का प्रथम लक्ष्य होना चाहिए। ब्रह्मचर्य पालन से शोक, बुढ़ापा, तथा मृत्यु भी शीघ्र नहीं आती है। ब्रह्मचर्य के पालन न करने से सर्व-सुख का नाश हो जाता है।

सुखस्य मूलं न हि रत्नजातं,
गृहं मही वा न च बन्धुसंघाः।
तथा न पुत्रा न कलत्र मित्रे
सद् ब्रह्मचर्यं हि यथानुकूलम् ।।१८।।

व्याख्या—सुख का मूल धन, रत्न आदि नहीं हैं। घर, भूमि या बन्धु-बान्धव भी सुख के मूल नहीं हैं। स्त्री, पुत्र, मित्र आदि कोई नहीं है, केवल ब्रह्मचर्य ही अनुकूल सुख का मूल है।

धर्म्यं यशस्यं बलदं प्रशस्यं,
लोकद्वयस्यास्ति रसायनं तत्।
पुरा धृतं भारत राजवर्गैः
स्वराष्ट्रकल्याणसमृद्धिकामैः ।।१९।।

व्याख्या—ब्रह्मचर्य ही धर्म, यश, बल का देने वाला, दोनों लोकों में रसायन है और जो प्रशंसनीय है। पहले भारतीय राजाओं ने जिस का पालन किया था। उसी ब्रह्मचर्य का पालन अपने राष्ट्र का कल्याण चाहने वालों को करना चाहिए।

अदैन्य वैराग्य विवेकतुष्टिः,
ज्ञान क्रियाणामिदमादिमूलम्।
तद् रक्षणीयं न विनाशनीयं,
सत्यव्रतानां किल जन्मबीजम् ॥२०॥

व्याख्या—अदीनता, वैराग्य, विवेक, सन्तोष, ज्ञान, सदाचार आदि का आदिमूल ब्रह्मचर्य ही है। ब्रह्मचर्य पालन प्रयत्न से करना चाहिए। वही सत्यव्रतों का बीज है।

विचारनीरेण निषिच्यमानं,
संप्रावृतं गोभिरलूयमानम्।
सुपूर्णतामेति समेधमानं,
सन्येवनं यौवनमस्मदीयम् ॥२१॥

व्याख्या—हमारा यौवन रूपी वन सद्विचार रूपी जल से निषिक्त हो। इन्द्रिय रूपी गौओं से सर्वथा सुरक्षित रहे। तभी पूर्ण बढ़ कर शोभित होता है।

मस्तिष्कमध्ये हृदयेऽपि तस्य,
बिन्दोर्निवासोऽस्त्यखिलेपि देहे।
तस्मिन् विनष्टे वद किन्न नष्टं,
मृत्योर्मुखे गच्छति मूर्खबुद्धिः ॥२२॥

व्याख्या—वीर्य का निवास विशेष रूप से मस्तिष्क में, हृदय में तथा सामान्यतया सब शरीर में है। उसके नष्ट होने पर कहिये क्या नष्ट नहीं हुआ ? वीर्यनाश करने वाला मूर्ख मनुष्य मृत्यु के मुख में गिरता है।

तद् रक्षणे मातृजनेन वाच्यं,
बाल्ये च पित्रापि मुदोपदेश्यम्।
पुरोहितैर्वीरकथाप्रवृत्तै
रध्यापकैर्दर्शन शास्त्ररूपैः ॥२३॥

व्याख्या—ब्रह्मचर्य पालन के लिए पहले माता उपदेश करे। फिर बचपन में पिता भी समझावे। पुरोहित, अध्यापक आदि उत्तम यज्ञों तथा दर्शन शास्त्रों के उत्कृष्ट विचारों द्वारा वीरता का संचार करके बालकों को ब्रह्मचर्य पालन की शिक्षा देवें।

सन्यासिभिर्ज्ञान कथाप्रसङ्गैः,
बौद्धैः स्वयं बुद्धविरागभावैः।
जैनैर्विरक्तैस्तपसाँ प्रभावैः
तद् ब्रह्मचर्यं बहुधोपदेश्यम् ॥२४॥

व्याख्या—संन्यासी लोग ज्ञान की कथाओं से, बुद्धिमान् लोग महात्माबुद्ध के वैराग्य भावों से, विरक्त लोग महावीर स्वामी के तपस्या प्रभावों से उसी ब्रह्मचर्य का उपदेश सदा किया करें।

विशुद्धबुद्धया परमेशसंस्तवैः,
जपोपवासेन्द्रिय संयमैश्च।
एतैस्तथान्यैरपि सत्यकार्यैः,
श्चिरन्मते वीर्यं सुरक्षणं स्यात् ॥२५॥

व्याख्या—शुद्ध बुद्धि से, ईश्वर की भक्ति से, जप, उपवास एवं इन्द्रिय निग्रह से, इसी प्रकार के अन्य सत्य-साधनों से खीष्ट मतानुयायी भी ब्रह्मचर्य रक्षा का उपदेश करें।

पश्चाद्भवैर्निश्चितवन्दनाभि--
र्नमाजसंज्ञैर्निजसाधनैश्च ।
इस्लामधर्मस्य पण्डितैस्तैः,
तद् ब्रह्मचर्यं बहुधोपदेश्यम् ॥२६॥

व्याख्या—ईसाई मत के बाद आने वाले इस्लाम धर्म वाले मौलवी भी निश्चित नमाज रूपी ईश्वर वन्दनाओं से ब्रह्मचर्य का उपदेश किया करें।

जरुद्रथस्योत्तम शिक्षणेन,
कुर्युर्व्रतं साध्विह पारसीकाः।
गोविन्दवीरोचित शिक्षणाच्च,
रक्षन्तु वीर्यं खलु शिष्यवीराः ॥२७॥

व्याख्या—पारसी लोग भी जरथुष्ट्र के उत्तम शिक्षण से सत्यव्रत का आचरण करें। गुरु गोविन्दसिंह जी की वीरता पूर्ण शिक्षा से सिक्ख लोग भी ब्रह्मचर्य पालन किया करें।

तथा यहूदी जनताश्च सर्वाः,
मोजेज शिक्षा परिशीलनेन।
सद्ब्रह्मचर्यं किल पालयन्तु,
तदेव मूलं जगतीसुखस्य ॥२८॥

व्याख्या—यहूदी लोग भी मोजेज नामक सन्त के उपदेश से ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करें। ब्रह्मचर्य ही संसार के सुख का मूल है।

नृजन्मलाभो ह्यति दुर्लभोस्ति,
सुदुर्लभस्तत्र कुलीनवंशः ।
सा धर्मशिक्षा त्वतिदुर्लभैव,
व्यर्थं त्रयं स्यात् यदि कामरोगः ॥२९॥

व्याख्या—पहले तो मनुष्य-जन्म ही दुर्लभ है। उसमें भी उत्तम कुल में जन्म होना अति दुर्लभ है। उत्तम कुल में भी धर्म शिक्षा का मिलना बड़ा कठिन है, यदि कामवासना का रोग लगा है तो ये तीनों ही व्यर्थ हो जाते हैं। १—मनुष्य योनि में जन्म लेना। २—उत्तम कुल में पैदा होना। ३—मनुष्यों के उत्तम कुल में धर्मशिक्षा का मिलना।

यस्मिन्सखे दीपशिखोपमेऽस्मिन्,
कन्या युवानः शलभत्वमाप्ताः ।
महासुखं प्रेप्सुरिहोत्पतिष्णुः,
कः साहसी कामपशुं ग्रहीतुम् ॥३०॥

व्याख्या—हे मित्र ! दीपशिखा के समान जिस कामाग्नि में नौजवान लड़के-लड़कियां पतंगे बन कर गिरते हैं। महान् सुख का इच्छुक कौन उन्नतिशील मनुष्य इस काम-वासना रूप पशु को वश में करने में साहस दिखा सकता है ? अर्थात् काम का निग्रह अति कठिन है।

संगस्य भोज्यस्य च शिक्षणस्य,
तथैव वातावरणस्यनित्यम् ।
प्रायेण चेतस्यपिचेन्द्रियेषु,
स्पष्ट प्रभावो भवतीह नृणाम् ॥३१॥

व्याख्या—प्रायः मनुष्यों पर संग का, भोजन का, शिक्षा का, अच्छे-बुरे वातावरण का, इन्द्रिय तथा मन पर स्पष्ट प्रभाव होता है।

तस्मात् सदा शुद्धधियाऽनपायं,
ह्येतानि चत्वारि रसायनानि।
शुभानि सेव्यानि न दुःखदानि,
ततः स्वयं सिध्यति सद्व्रतं तत् ॥३२॥

व्याख्या—इसलिए सदा शुद्ध चित्त वाले व्यक्ति को संग, भोजन, शिक्षा तथा वातावरण इन चारों का ध्यान रखना चाहिए। संग आदि चारों शुभ ही सेवन करने चाहिए; अशुभ नहीं। शुभ सेवन किए हुए ये रसायन हैं। अशुभ सेवन किए हुए दुःखप्रद हैं। इनके शुद्ध सेवन से ब्रह्मचर्यव्रत स्वयं सिद्ध हो जाता है।

तत् सप्तधात्वात्मक देहरत्नं,
मनुष्ययोनौ बहुभाग्यलब्धम्।
आरोग्यवैराग्य सुपुष्टिकामैः,
सद्ब्रह्मचर्येक बलेन रक्ष्यम् ॥३३॥

व्याख्या—रस, रक्त, मांस, मज्जा आदि सात धातुओं वाला यह मनुष्य देह बड़े भाग्य से मिला है, उसका आरोग्य तथा बल चाहने वालों को ब्रह्मचर्यव्रत का पालन सदा करना चाहिए।

कौला विनष्टा द्रविडा विनष्टाः,
नष्टा कुरैशी कुल दुष्टवृन्दाः।
जारो रसीयन् स्वयमेव नष्टो,
विन्दोर्विनाशस्य वृथा प्रचारात् ॥३४॥

व्याख्या—कौल, द्रविड़, कुरैशीवंश, रूस का जार तथा अन्य दुष्ट दुराचारी लोग वीर्यनाश के वृथा प्रचार से स्वयं नष्ट हो गए।

मुस्लिम् सुसाम्राज्यविनाश हेतुः,
ख्यातिंगताऽभूद् व्यभिचारवृद्धिः।
हिन्दूनृपाणामपि राज्यनाशे,
स्त्रैणं हिं सख्यं प्रगुणीबभूव ॥३५॥

व्याख्या—व्यभिचार की वृद्धि से मुस्लिम साम्राज्य का विनाश हुआ है। यह इतिहास प्रसिद्ध है। हिन्दू राजाओं के राज्य नाश में भी अति स्त्री प्रसक्ति ही मुख्य कारण है।

तस्मान्मनुष्यैर्बहुसौख्यकामैर्
वीर्यं निधेयं स्थिरमेव देहे।
संसार दुःखस्य विनाशनार्थं,
तद् ब्रह्मचर्यं जनतासु भाष्यम् ॥३६॥

व्याख्या—इसलिए बहुत सुख चाहने वाले मनुष्यों को अपने में वीर्य सुरक्षित रखना चाहिए। जिससे संसार के दुःख का नाश हो। उस ब्रह्मचर्य का उपदेश जनता में होना चाहिए।

वीर्यस्य लाभं न विदन्ति मूढाः,
किमस्ति तस्मिन् निहितं विधात्रा।
अधीतविद्या अपि तेन विज्ञाः,
ये ब्रह्मचर्यस्य सुखनानभिज्ञाः ॥३७॥

व्याख्या—मूर्ख लोग वीर्य का लाभ नहीं जानते। भगवान् ने वीर्य में क्या तत्त्व रक्खा है! यह उन्हें मालूम नहीं। जो ब्रह्मचर्य के सुख को नहीं जानते वे अक्षर पढ़े हुए भी विद्वान् नहीं हैं।

जिह्वा वितृप्तौ नहि सौख्यगन्धः,
शुक्रस्य नाशे खलु सर्वनाशः।

मद्ये च चित्रे च चरित्रनाश

स्तद् ब्रह्मचर्यं हि सुखस्यमूलम् ।।३८।।

व्याख्या—जीभ की चंचलता में कोई सुख नहीं है। वीर्य के नाश में सब कुछ नष्ट हो जाता है। शराब के पीनें तथा गन्दे चित्रों के देखने से चरित्र का नाश होता है। इसलिए ब्रह्मचर्य ही सुख का मूल है।

व्रतै रहिंसादिकसत्यमार्गैर्

विशोध्य नूनं हृदयान्तरालम् ।

सत्येन सत्यं जगदादि हेतुं,

सद् ब्रह्मचर्यं हि समाश्रयध्वम् ।।३९।।

व्याख्या—सत्य भाषण आदि व्रत तथा अहिंसा आदि सन्मार्गों से हृदय को शुद्ध करके सत्य स्वरूप, जगत् का आदि कारण जो ब्रह्म है उसके व्रत का पालन करो।

आयुक्षणानेव निजान् स कामो,

विनाशयन्नैव सुखं लभेत ।

तथैव विद्वांश्चकुसंगदोषात्,

कामेन बद्धश्च रुजं प्रयाति ।।४०।।

व्याख्या—कामी पुरुष भोग करता हुआ अपने आयु के क्षणों को ही नष्ट करता है। उसे सुख नहीं मिलता। उसी प्रकार विद्वान् भी यदि कुसंग दोष से कामवासना में फंसता है तो रोग को प्राप्त होता है।

बाल्ये विवाहादपि संगदोषैः,

आहार संचार चरित्रदोषैः ।

नृणां भवत्येव न वीर्यरक्षा,
ततो निरुद्धं भुवि योगिजन्म ।।४१।।

व्याख्या—बचपन के विवाह से, कुसंग से आहार-विहार तथा आचार के दोष से मनुष्य ब्रह्मचर्य पालन नहीं कर सकता। इसलिए संसार में योगियों का जन्म होना रुक गया है।

कान्तिश्च वीर्येऽस्ति बलं च वीर्ये,
तत्साहसं ज्ञानमिदं च वीर्ये।
दीर्घायुरारोग्यकृतिश्च वीर्ये,
सद् ब्रह्मचर्ये सति दुर्लभं किम् ।।४२।।

व्याख्या—वीर्य में ही कान्ति, बल, साहस, ज्ञान, दीर्घ आयुष्य, आरोग्य आदि सब उत्तम गुण हैं। ब्रह्मचर्य के होने पर क्या दुर्लभ है?।

शुक्रस्य रक्षां हृदये निधाय,
महर्षयो दार्शनिका बभूवुः।
शुक्रंविना ते द्विजभिक्षुवर्गाः,
ज्ञानेन हीना जनतासु भाराः ।।४३।।

व्याख्या—हृदय में वीर्य रक्षा का विचार स्थिर करके पहले महर्षि बड़े भारी दार्शनिक हो गए हैं। बिना वीर्य के तो वही गरीब ब्राह्मण तथा भिखारी होकर जनता में भार रूप हैं।

हिमालये वा क्वचिदन्यतो वा,
श्रुता मया ये विरला विरक्ताः।
परात्मविज्ञानरतेष्वभूत् तत्,
सद् ब्रह्मचर्यं खलु तेष्वपूर्वम् ।।४४।।

व्याख्या—मैंने जो हिमालय में या उससे अन्य स्थानों में कुछ विरले विरक्त योगी सुने हैं; वे सब परमात्मा के विज्ञान में लगे हुए श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य से युक्त हुए हैं।

नारीगणो भारतदेशरत्नं
गार्गी च मैत्रेय्य रोमशा च।
सुदुर्लभाऽसौ सुलभापिनूनं,
सद् ब्रह्मचर्यस्य गुणं ब्रवीति ॥४५॥

व्याख्या—भारत देश में नारियों की शिरोमणि गार्गी, मैत्रेयो, रोमशा तथा सुलभा आदि श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य के गुणों का वर्णन करती हैं। सुलभा देवी नाम से सुलभा होने पर भी वस्तुतः दुर्लभा ही है।

राज्ञः समाजाच्च महात्मनश्च,
धर्माच्च भीतिर्विरतिश्च पापात्।
बाल्ये सदाचारकृतेश्च शिक्षा,
सद् ब्रह्मचर्ये किल हेतवोऽमी ॥४६॥

व्याख्या—राजा का भय, समाज का भय, महात्माओं का भय, धर्म का भय, पाप से ग्लानि, तथा बचपन में सदाचार की शिक्षा—ये ब्रह्मचर्य धारण करने में हेतु हैं।

शुभस्य हेतुर्महतां हि संगः,
पापं प्रसूते खलु नीच संगः।
अतः कुसंगः परिवर्जनीयो,
माया नटीसङ्गचलन्मतीनाम् ॥४७॥

व्याख्या—सज्जनों के संग से शुभ होता है। नीचों के संग से पाप होता है। इसलिए माया रूपी नटिनी के संग से चंचल बुद्धि वाले जनों का संग छोड़ देना चाहिए।

भुक्तान्नसारा रसरक्तमज्जा—
स्तज्जं क्रमात् संचित वीर्यरत्नम् ।
तत् पालनाच्छोक नदीप्रवाहः,
स्वयं प्रशाम्यत्यसमिद्यथाऽग्निः ॥४८॥

व्याख्या—खाये हुए अन्न का सारा रस, रक्त, मज्जा, मांस आदि हैं। उनसे क्रमशः वीर्यरूपी रत्न शरीर में तैयार होता है। वीर्य के रक्षण से शोक रूपी नदी का वेग ऐसे शान्त हो जाता है जैसे बिना लकड़ी के आग।

कृष्यादिभिः कर्मभिरार्दितानां,
कामात्मकानाँ च विलोक्य दुःखम् ।
स्वास्थ्यं च दृष्ट्वा शमकामुकानाँ,
वीर्यं सुरक्ष्यं सततं महद्भिः ॥४९॥

व्याख्या—कृषि आदि कठिन कार्यों से जो कृशकाय हैं। तथा कामचिन्ता से जो व्याकुल हैं। उनका दुःख देखकर साथ ही कामः वासना हीन मनुष्यों को प्रसन्न एवं शान्त देखकर सदा वीर्य की रक्षा करनी चाहिए।

बुभुक्षया क्रान्तमतिः सुविद्वान्,
दारिद्यमासाद्य कुटुम्बतान्तः ।
करोति पापं स्वपरिग्रहार्थं,
तथा न वीर्यं विसृजेत्सुखार्थी ॥५०॥

व्याख्या—भूखा, दरिद्र कुटुम्बी विद्वान् भी अपने परिवार के लिए पाप कर बैठता है। किन्तु उत्तम सुख चाहने वाला कदापि वीर्यनाश न करे।

नृपा इमे भारतदेशजाताः,
शिश्नेन्द्रियासक्ततया विनष्टाः ।
तत् स्वप्नवत् क्षुद्रसुखं विसृज्य,
धार्यं सुधीभिः खलु वीर्यरत्नम् ॥५१॥

व्याख्या—भारत देश के ये राजा लोग विषयोपभोग परायण होकर ही नष्ट हुए हैं। इसलिए स्वप्न समान क्षुद्र विषय सुख छोड़कर बुद्धिमान सदा ब्रह्मचर्य का पालन करे।

विन्दोर्विनाशेन सुखं यदस्ति
न तस्य मूलं किल मूत्रमार्गः ।
आनन्द एवान्तरतस्त्वदीयात्,
दत्तोविधात्रा बहिरेष याति ॥५२॥

व्याख्या—वीर्यनाश करते हुए जो सुख प्रतीत होता है उसका मूल मूत्र का मार्ग अथवा शिश्नेन्द्रिय नहीं है। वह तो भगवान् का दिया हुआ तेज अपना ही आनन्द है जो अन्दर आत्मा से प्रस्फुटित होकर बाहर निकल रहा है। (उसे समझ)।

दुर्वासनादूषितमानसोत्था,
या चौर्य मिथ्यादिकदुष्प्रवृत्तिः ।
या प्राणिहिंसास्ति च मैथुनेच्छा,
तच्छुद्धि हेतु खलु वीर्यरक्षा ॥५३॥

व्याख्या—दुष्टवासना से दूषित मन में उठने वाली जो चोरी, मिथ्याभाषण आदि की कुप्रवृत्ति है और जो प्राणियों की हिंसा एवं मैथुन सम्बन्धी इच्छा है उनकी शुद्धि ब्रह्मचर्य पालन से होती है

अहो कियन्मौर्ख्यमिदं महीयो
यन्नाशयित्वा स्वशरीररत्नम् ।
मन्यन्त एते सुखमस्ति बाह्ये,
नैतद् विजानन्ति सुखं स्वमन्तः ॥५४॥

व्याख्या—लोगों की यह कितनी बड़ी मूर्खता है अपनी शरीरस्थ शक्ति का नाश करके बाह्य स्त्री-स्पर्श आदि में सुख मानते हैं। वे यह नहीं समझते कि यह तो मेरा अपने आत्मा का ही सुख है।

तन् मायया मोहितचेतसोऽमो,
विहाय भीतिं परमात्मनस्ताम् ।
क्षुद्रस्य कामाख्य सुखस्य हेतो,
कामातुरा नाशमहो ! व्रजन्ति ॥५५॥

व्याख्या—इस प्रकार कामवासना से मूढचित्त ये लोग परमात्मा का भय छोड़कर क्षुद्र काम सुख के लिए आतुर हुए अपने आपको नष्ट कर रहे हैं—ओह ! आश्चर्य है !

धनं पदं शासन शक्ति कार्यं
प्राप्यैव कामे प्रसजन्ति दुष्टाः ।
वदन्ति वातावरणस्य दोषं,
तेषां कृते लेनिननीतिरेषा ॥५६॥

व्याख्या—अच्छा धन, ऊंचा पद, राज्यशासन का अधिकार पाकर दुष्ट लोग कामवासना में प्रवृत्त होते हैं। साथ में वातावरण का दोष बताते हैं, उन लोगों के सम्बन्ध में रूस देश के नेता लेनिन की यह निम्न लिखित नीति है—

पश्यन्तु हे छात्रगणा भवन्तः
शुक्रस्य नाशेन सुखं यदस्ति।
स्त्रियः शरीरे यदि मन्यते तत्,
कथं न पश्चादपि वीर्यनाशात् ॥५७॥

व्याख्या—हे छात्रो! देखो! तुम लोग स्त्री के शरीर का स्पर्श करके वीर्यनाश करते हुए जो सुख मानते हो, वह स्त्री शरीर के स्पर्श में सुख नहीं है। यदि वहां सुख होता तो वीर्यनाश के पश्चात् स्त्री शरीर के स्पर्श में सुख मिलता। वीर्यनाश हो जाने पर स्त्री स्पर्श में कुछ भी सुख न मिलने से स्त्री के शरीर स्पर्श में सुख नहीं है; यह सिद्ध होता है।

पश्यन्तु हे छात्रगणा भवन्तो,
जीवात्मनस्तत् सुखमस्ति नान्यत्।
वीर्येण साकं बहिरेतदेति
भ्रान्त्यैव जानात्यबला शरीरे ॥५८॥

व्याख्या—हे नवयुवक छात्रो! देखो! वह सुख जीवात्मा का है और किसी का नहीं। वही जीवात्मा का सुख वीर्य के साथ बाहर आता हुआ अनुभव होता है। मूढ़ लोग भ्रान्ति से स्त्री-शरीर में सुख मानते हैं।

संस्कारदानादथ पापदानात्
शोक प्रदानादपि रोगदानात्।
दैन्य प्रदानादिह मौर्ख्यदानात्,
स्युः कामशत्रोः परिवर्जितारः ॥५९॥

व्याख्या—हे छात्रो! तुम कामरूपी शत्रु को मार भगादो।

क्योंकि यह कामवासना के संस्कार देता है। पाप में प्रवृत्त करता है। रोग, शोक, दीनता, मूर्खता आदि दुर्गुण प्रदान करता है।

न मानवीयं ह्यतिरम्यहर्म्यं,
वीर्यस्य नाशेन विनाशनीयम्।
अत्युज्ज्वलं कान्तिमयं शरीरं,
सद् ब्रह्मचर्यैक बलेन रक्ष्यम् ॥६०॥

व्याख्या—हे विद्यार्थियो ! यह मनुष्य देह बहुत सुन्दर महल है। वीर्य के नाश से इस महल का नाश न करो। उज्ज्वल दीप्ति युक्त इस शरीर की ब्रह्मचर्य द्वारा रक्षा करो।

प्रोक्तं मनः सत्पुरुषार्थमूलं,
वीर्यान्तरे तस्य निवास कार्यम्।
तस्मिन् विनष्टे मन एव नष्टं,
कुतः पुनः स्यात् पुरुषार्थकार्यम् ॥६१॥

व्याख्या—अति उच्च पुरुषार्थ का मूल मन ही कहा है। वीर्य का निवास मन में भी है। वीर्यनाश होनें पर मन शक्ति हीन हो नष्ट हो जाता है। मन के बिना पुरुषार्थ कैसे कर सकोगे।

पापस्य हेतुर्महतामसेवा,
परात्मशिक्षा परिवर्जनं च।
अध्यात्म शिक्षा परिवर्जनेन,
महानुभावा न हि सन्ति भूमौ ॥६२॥

व्याख्या—महात्माओं की सेवा न करना, परमात्मविज्ञान सम्बन्धी शिक्षा का न होना, ये पाप के मूल हैं। अध्यात्म शिक्षा के छूट जावें से संसार में महात्मा लोग पैदा होनें बन्द हो गए।

अलर्क मान्धातृ दधीचि भोजाः,
रघुः पृथुः पाण्डु सुताश्चसर्वे ।
अद्यापि जीवन्ति यशः प्रकर्षैर
यतस्त आसन् गृह एव युक्ताः ॥६३॥

व्याख्या—अलर्क, मान्धाता, दधीचि भोज, रघु, पृथु, तथा पाण्डु-पुत्र भीम, अर्जुन आदि अपने ब्रह्मचर्य रूपी यश के बल से अब भी जीवित हैं । क्योंकि ये महात्मा लोग गृहस्थ होते हुए भी योगी थे ।

दुःखानि लभ्य इहैव लोकैर
वीर्यस्य नाशाय कृत प्रयत्नैः ।
क्रीणन्ति दुःखानि जनाः स्वयं ते
तद् वीर्यरत्नं जलवन्निपात्य ॥६४॥

व्याख्या—वीर्यनाश के लिए यत्न करने वाले लोग इसी संसार में बहुत दुःख भोगते हैं, वे अपने वीर्य रूपी रत्न को जल के समान व्यर्थ बखेर कर स्वयं दुःख खरीदते हैं ।।

पश्यन्तु हे छात्रगणा भवन्तो,
यत् स्वप्ननष्टं किल वीर्यरत्नम् ।
तस्मिन् क्षणे यः सुखलेश एषः,
स आत्मनस्ते, नतु योषितोस्ति ॥६५॥

व्याख्या—हे नवयुवक विद्यार्थियो ! देखो । जो स्वप्नदोष में वीर्य रूपी रत्न नष्ट होते हुए कुछ सुख अनुभव होता है, वह सुख केवल तुम्हारी आत्मा का है । स्त्री के शरीरस्पर्श में कोई सुख नहीं है ।

एवं सुषुप्तौ सुखमस्ति रम्यं,
ह्यवर्णनीयं यतिभिः सुदृष्टम् ।
जाग्रत समाधावपि चित्तवृत्तेर्,
महत्सुखं तन्, न तु योषितोस्ति ॥६६॥

व्याख्या—हे छात्रो ! इसी प्रकार सुषुप्ति (गाढनिद्रा) में जो सुन्दर सुख प्रतीत होता है जिसका स्पष्ट दर्शन योगी लोग करते हैं उस अनिर्वचनीय सुख का अनुभव ही जागरित अवस्था तथा समाधि अवस्था में होता है । स्त्री-शरीर स्पर्श में कोई सुख नहीं है ।

वैराग्यशास्त्राध्ययनेन पुण्यैः,
कान्ते च जाते मनसोह शान्ते ।
कामस्य दर्पे दमिते च सम्यक्,
विड्भाण्डतुल्या ललना विभान्ति ॥६७॥

व्याख्या—जब मन वैराग्य शास्त्र के अध्ययन से केवल पुण्य में ही प्रवृत्त होकर शान्त हो जाता है और काम का वेग सर्वथा दब जाता है तब स्त्रियां शौच की हंडिया के समान प्रतीत होती हैं ।

तौ सूर्यचन्द्रौ ननु पश्यतो मां,
स्वर्गाच्च देवाः प्रविलोकयन्ति ।
समीक्ष्यतेऽसौ च जगद् विधाता,
क्षणं क्व कामस्य विभावयामि ॥६८॥

व्याख्या—मनुष्य को विचारना चाहिए कि मुझे सूर्य-चन्द्रमा देख रहे हैं । साथ ही स्वर्ग से देवता भी मेरा निरीक्षण कर रहे हैं और जगन्नियन्ता परमात्मा तो प्रतिक्षण देख रहा है उस अवस्था में मुझे

काम-वासना में फंसने का कब अवसर मिल सकता है अर्थात् कोई नहीं।

भोगा न भूमौ क्षयमाव्रजन्ति,
भोगातुरोऽहं क्षयमाप्नवानि।
शिश्नेन्द्रियासक्ति विनष्ट चेताः,
कामं न जाने निरये पतिष्यन् ॥६९॥

व्याख्या—इस भूतल में भोग कभी क्षीण नहीं होंगे। भोगों में लगा हुआ मैं ही क्षीण हो जाऊँगा। शिश्नोदर परायण होकर मूढ-चित्त मैं नरक में गिरता हुआ भी काम से विरत नहीं होता हूं। यह कितने दुःख की बात है।

प्रसार्यशूलानि जनाः पृथिव्यां,
धावन्तु तेषामुपरि प्रकामम्।
प्राणान् निजांश्चैव समुत्सृजन्तु,
कुर्युर्न सङ्गं तरुणीतनूनाम् ॥७०॥

व्याख्या—चाहे भूमि पर गड़े शूलों पर दौड़ना पड़े और प्राण भी संकट में पड़ जावें तो भी ब्रह्मचारी स्त्री-शरीर का स्पर्श कदापि न करे।

ये ब्रह्मचर्यं न हि पालयन्ति,
कामोपरोधे च न संरभन्ते।
ते छात्रपाशा मुखतो विरक्ता,
विड्भाण्डतुल्या परिवर्जनीयाः ॥७१॥

व्याख्या—जो विद्यार्थी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन नहीं करते और

न कामवासना को रोकने का प्रयत्न करते हैं वे बनावटी वैराग्य धारण करने वाले सब टट्टी के बर्तन के समान त्यागने योग्य हैं।

म्रियेत कामं प्रदहच्चितायां,
सुमेरु शृंगान् निपतेच्च भूयः।
खड्गेन हन्याच्च तनुं स्वकीयां,
विद्वान् न पश्येत्तरुणी शरीरम् ॥७२॥

व्याख्या—चाहे जलती चिता में जल कर मर जावे। सुमेरु पर्वत की चोटी से गिर कर प्राण त्याग कर देवे। या तलवार से अपना शरीर काट डाले परन्तु बुद्धिमान् ब्रह्मचारी स्त्री के शरीर का दर्शन न करे।

भुक्त्वा विषं मृत्युमुखे प्रयाणं,
स्वयं विदध्यादपिनागदंशम्।
हिमालयाद् वा पतनं वरं स्यात्,
कामातुरः सन्न स्पृशन्तु मूत्रम् ॥७३॥

व्याख्या—विष खाकर मर जावे। स्वयं सर्प से कटवा कर शरीर छोड़ देवे। या हिमालय पहाड़ से गिर कर प्राण छोड़ दे परन्तु कामी बन कर शिश्नेन्द्रिय का स्पर्श कदापि न करे।

मूत्रस्य पानं ह्यपि तद्वरं स्यात्,
विड्लेपनं स्यादपि कामुकस्य।
शुन्ध्याच्च कामो रजसः प्रवृत्ति,
न क्वापि सभ्यास्तु जनाः पतन्तु ॥७४॥

व्याख्या—कामवासना का शिकार बना मनुष्य योनिमार्ग से निकलते मूत्र को पीने में भी नहीं हिचकिचाता। टट्टी के लेप को भी पसन्द करता है। स्त्री के रजोदर्शन समय में भी उससे रमण करता

है। उस अशुद्धि में भी शुद्धि देखता है किन्तु विवेकी सभ्य मनुष्य तो उस पापपंक में कदापि नहीं गिरता।

तेषां प्रसंगात् व्यसनातुराणां,
बुद्धिर्विशुद्धापि लघु प्रणश्येत्।
तस्मात् विनेया अभिरूपचर्याः,
सद् ब्रह्मचर्याश्रममाश्रयेयुः ॥७५॥

व्याख्या—उन व्यसनी छात्रों के संग से शुद्धाचारी छात्रों की बुद्धि भी शीघ्र बिगड़ जाती है। इसलिए दुष्ट संग रहित अच्छे चरित्र वाले छात्र ही ब्रह्मचर्याश्रम में प्रविष्ट होने चाहिए।

तन् मानवीयाऽस्तिशरीर सृष्टिः
तन्मूलभूतं हि सुवीर्यरत्नम्।
तदेव रक्ष्यं महताश्रमेण,
तद् ब्रह्मचर्यं किलनाम कीर्त्यम् ॥७६॥

व्याख्या—वह मानव शरीर की सृष्टि ही उत्तम है। जिसका मूलभूत श्रेष्ठ वीर्यरत्न है। पूर्ण परिश्रम से उस वीर्य की रक्षा करनी चाहिए। वह रक्षा केवल ब्रह्मचर्य द्वारा ही हो सकती है।

सर्वोन्नतिध्वंसकरात् करालात्,
सदा सदाचारहरादरालात्।
जातीय राष्ट्रीय विरोधमूलात्,
कामाख्यः शत्रोर्भगवान् निपातु ॥७७॥

व्याख्या—उस काम रूप शत्रु से भगवान् बचावे, जो काम सब उन्नतियों का विनाशक है। भयंकर और कुटिल है। सदा सदाचार का नाश करने वाला है। और जाति देश के विरोध का मूल है।

इति तृतीयोऽध्यायः

अथ चतुर्थोऽध्यायः

यस्य प्रभावान् न मनः प्रशान्ति-
र्न वक्त्रकान्तिर्भवतीह लोके ।
भृशं दुरुच्छेदविचेष्टितं तं,
कामाख्यशत्रुं स्ववशंनयेत ॥१॥

व्याख्या—जिसके प्रभाव से इस लोक में न मन को शान्ति मिलती है। न चेहरे पर रौनक रहती है। उस दुष्ट चेष्टा वाले, कठिनता से वश में आने वाले, काम रूपी शत्रु को मनुष्य अपने वश में करे।

न यत्र धर्मो न सुखं न शान्तिः,
नार्थार्जनं चास्त्यभिनन्दनीयम् ।
गूढं निरूढं तमनात्मनीयं,
कामाख्यशत्रुं मनुजो विजह्यात् ॥२॥

व्याख्या—जहां न धर्म है, न सुख है, न शान्ति है। न प्रशंसा योग्य धन है। उस गूढ़ छिपे हुए अहितकर कामरूप शत्रु को मनुष्य नष्ट कर देवे।

दुःखानि भूयांसि समापतन्ति,
सुखस्य मूलं विनश्यतीव ।
कामप्रसंगादिति बुद्धिमद्भिः,
स्वप्नेपि नासौ परिभावनीयः ॥३॥

व्याख्या—कामवासना की अधिकता से बहुत भारी दुःख आ घेरते हैं : सुख की जड़ नष्ट हो जाती है। इसलिए बुद्धिमान् लोगों को स्वप्न में भी कामवासना का विचार नहीं करना चाहिए।

सुखस्य वै वैषयिकस्य नित्यं,
व्यलोकि विद्याप्रतिबन्धकत्वम्।
तस्मात् सुविज्ञान समृद्धि कामैः,
कामात्मता नैव मता प्रशस्ता ॥४॥

व्याख्या—विषय जन्य दुःख हमेशा विद्या का विरोधी देखा गया है। इसलिए उत्तम विज्ञान तथा ऐश्वर्य की सिद्धि के लिए काम-वासना का शिकार होना अच्छा नहीं है।

युधिष्ठिरं भीष्मउवाच तत्त्वं,
पुण्यं प्रभावाज्जित शत्रुसत्वम्।
प्राप्तोसि यस्मात् वसुधाधिपत्वम्,
तद् ब्रह्मचर्यस्य गुणं शृणुत्वम् ॥५॥

व्याख्या—भीष्म जी महाराज युधिष्ठिर जी से कहते हैं कि हे राजन्! तुमने अपने पुण्य के प्रभाव से शत्रु जीत लिए हैं और अब तुम समस्त भूमि के शासक स्वामी बन गए हो तो ब्रह्मचर्य के गुण सुनो।

आजन्म यो ब्रह्मविचारणायां,
सद् ब्रह्मचर्यस्य व्रतमातनोति।
अप्राप्यमत्रास्ति न तस्य किंचित्,
यथार्थमेतत् त्वमवेहि राजन् ॥६॥

व्याख्या—जो मनुष्य जीवन पर्यन्त परब्रह्म के विचार में तत्पर होकर श्रेष्ठ ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करता है, उस को इस संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है। यह बात तुम सत्य जानो।

चकास्त्यृषीणां बहुकोटिसंख्या,
या ब्रह्मलोकेऽस्ति विराजमाना।
सा ब्रह्मचर्यस्य परा विभूति,
र्यथार्थमेतत् त्वमवेहि राजन् ॥७॥

व्याख्या—ऋषियों की कई करोड़ संख्या ब्रह्मचर्य का पालन करके ब्रह्म लोक अथवा मोक्ष धाम में विराजमान है। वह ब्रह्मचर्य को बड़ी भारी विभूति है। यह बात तुम सत्य जानो।

सत्ये रतानां सततं जनानां,
जितेन्द्रियाणां स्थिरवीर्यभाजाम्।
सद् ब्रह्मचर्यं समुपासितं सत्,
सर्वाणि पापानि दहत्यवश्यम् ॥८॥

व्याख्या—जो निरन्तर सत्य में रत, जितेन्द्रिय, स्थिर, वीर्यवान् पुरुष हैं उनके द्वारा पालन किया हुआ ब्रह्मचर्य का व्रत सब पापों को दग्ध कर देता है।

समस्त सम्पत्सुख वृद्धिकारि,
भवेन्मनोहारि गुणानुसारि।
येषां पवित्रं चरितं विचित्रं,
कुतो न तेषां जगदस्तु मित्रम् ॥९॥

व्याख्या—सब धन ऐश्वर्य तथा सुख का देने वाला, सद्गुणों के

युक्त जिनका सुन्दर पवित्र जीवन चरित्र है, उनका मित्र संसार क्यों न हो।

सद् ब्रह्मचर्यस्य गुणानधीत्य,
ज्यायान् मनुष्योभवति त्रिलोक्याम्।
ए एव वन्द्यः स च दर्शनीयः,
स सद्गुरुः शिष्यवरः स एव ॥१०॥

व्याख्या—ब्रह्मचर्य के गुणों को धारण करके मनुष्य संसार में बहुत महान् हो जाता है। वह सब का वन्दनीय तथा दर्शनीय होता है। वास्तव में सच्चा गुरु एवं सच्चा शिष्य भी वही है।

यो धार्मिकाचार्य कुलोपसेवी,
सद्वेदविद्याधिगमाय भूयः।
जितेन्द्रियः सन् यतते सदैव,
स ब्रह्मचारी भवति प्रसिद्धः ॥११॥

व्याख्या—ब्रह्मचारी उसे कहते हैं जो धार्मिक आचार्य के कुल में जाकर उनकी विधिवत् सेवा करता है तथा वेद वेदाङ्गादि की पूर्ण शिक्षा के लिए जितेन्द्रिय होकर प्रयत्न करता है।

प्रत्यक्षदृष्टा अपि ये कुचेष्टाः,
पुत्रांश्च शिष्यांश्च न दण्डयन्ति।
न सन्ति ताता न च शिक्षकास्ते,
तेषां चरित्रं न सुरक्षितं स्यात् ॥१२॥

व्याख्या—जो लोग अपने सामने प्रत्यक्ष कुचेष्टा करते हुए देख कर भी अपने पुत्र तथा छात्रों को दण्ड नहीं देते, उन्हें सन्मार्ग पर

नहीं लाते, वे सच्चे संरक्षक एवं सुशिक्षक नहीं हो सकते। उनकी शिक्षा के अभाव में चरित्र सुरक्षित नहीं रह सकता।

ये वीर्यरक्षा प्रवणा मनुष्याः,
शास्त्रेपि लोकेपि च लब्धनिष्ठाः।
कायेन वाचा मनसा पवित्राः,
ते पुण्यभाजः सततं नमस्याः ॥१३॥

व्याख्या—जो तो वीर्य रक्षा में निरत, लोक में प्रतिष्ठित, शास्त्र के पण्डित, मन वचन, कर्म, से पवित्र मनुष्य हैं। वे पुण्यात्मा सदा नमस्कार के योग्य हैं।

विद्यां सुखं धर्ममथोन्नयन्तः,
कामादि शत्रूनवधीरयन्तः।
चरित्ररक्षां च सुशिक्षयन्तः,
ते सन्तिसन्तो भुवने कियन्तः ॥१४॥

व्याख्या—विद्या, धर्म, सुख की उन्नति करने वाले, कामादि शत्रुओं को दबाने वाले चरित्र रक्षा की शिक्षा देने वाले मनुष्य संसार में कितने हैं? अर्थात् बहुत थोड़े हैं।

आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः,
साङ्गा अधीता इति सत्यमुक्तम्।
तस्मात् सदाचारवतेह पुंसा,
स्थिरं यशः स्वं विमली क्रियेत ॥१५॥

व्याख्या—आचारहीन मनुष्य को अङ्गोपाङ्ग सहित पढ़े हुए चारों वेद भी पवित्र नहीं कर सकते, यह प्राचीन वचन सत्य ही है। इसलिए मनुष्य को पढ़-लिख कर आचारवान् होना चाहिए। उसी से उसका यश विमल हो सकता है। केवल पढ़ने से नहीं।

चरित्रमस्ति प्रथमं जगत्यां,
तदेव रक्ष्यं बहुशः प्रयत्नात् ।
तद्रक्षणादस्त्यखिलस्य रक्षा,
तस्य प्रणाशे सति सर्वनाशः ॥१६॥

व्याख्या—संसार में चरित्र ही मुख्य है। उसी की रक्षा यत्न से करनी चाहिए। चरित्र की रक्षा से सब की रक्षा है। उसके नाश से सबका नाश है।

वृत्तं च वित्तं च समं परीतः
सुखस्य मूलं ननु वृत्तमेव।
वित्तस्यतृप्तो न भवेन्मनुष्यो
वृत्तेन तृप्तस्तु सनातनोऽस्ति ॥१७॥

व्याख्या—वृत्त (सदाचार) और वित्त (धन) ये दोनों मनुष्य के पास होने चाहिए। सुख का मूल तो सदाचार ही है। धन से मनुष्य कभी तृप्त नहीं हुआ। किन्तु सदाचार से तो सदा ही तृप्त है।

(पथ्यानुष्टुप्)

श्रेष्ठा मात्रादयस्त्वेवं कुमाराननुशासति ।
श्रूयतामङ्ग ! पुत्रा वः कल्याणमुपदिश्यते ॥१८॥

व्याख्या—अच्छे माता-पिता आदि तो अपने सन्तानों को इस प्रकार सुन्दर उपदेश करते हैं—कि हे पुत्रो ! सुनो, हम तुम्हारे कल्याण की बात कहते हैं॥

विद्याध्ययनसत्संगोच्चगुण ग्रहणार्थिभिः ।
भाव्यमेतर्हि युष्माभिर्वीर्यनिग्रहकारिभिः ॥१९॥

व्याख्या—इस बाल्यकाल में तुम्हें विद्या पढ़ने, सत्संग करने, सद्गुण धारण करने, तथा वीर्यरक्षा करने में आलस्य छोड़कर सदा तत्पर रहना चाहिए।

सेव्याचार्यादिसेवायाः शरीरात्मोन्नतेस्तथा ।
कालोऽयं विद्यते पूर्णविद्यावत्त्वस्य वः शुभः ॥२०॥

व्याख्या—तुम्हारा यह समय अपने पूज्य गुरु आचार्य आदि की सेवा करने का तथा शरीर आत्मा की उन्नति के साथ पूर्ण विद्वान् बनने का है।

इदानीमप्रबुद्धाश्चेद् भविष्यथ पतिष्यथ ।
न काल पुनरेतादृक् प्राप्तुं शक्यः कथंचन ॥२१॥

व्याख्या—तुम इस समय नहीं चेतोगे तो पतित हो जाओगे। ऐसा समय फिर तुम्हें कभी न मिलेगा।

भोजनाच्छादनादेर्वो व्यवस्थाकारिणो वयम् ।
यावत् वर्त्तामहे गेहे विद्यार्थस्तावदर्ज्यताम् ॥२२॥

व्याख्या—जब तक हम लोग घर में तुम्हें भोजन आच्छादन आदि की व्यवस्था करने वाले वर्त्तमान हैं तब तक पूर्ण विद्यारूपी धन का अर्जन करो।

इदमेव धनं पुण्यमक्षय्यं च निगद्यते ।
चौराहार्यमनाहार्यं भारो यस्य न विद्यते ॥२३॥

व्याख्या—यह विद्यारूप धन ही पुण्य है। कभी नष्ट न होने वाला है। इसे चोर नहीं चुरा सकते। यह असली धन है। इसका बोझ भी कुछ नहीं।

विद्यानिधिमुपाध्वं वः कल्याणं येन संभवेत् ।
सन्निधेः सन्निधेरेव श्वः श्रेयसमवाप्यते ॥२४॥

व्याख्या—तुम लोग इस विद्यारूप धन के खजाने की ही उपासना करो। जिससे तुम्हारा कल्याण हो। क्योंकि उत्तम निधि के सांनिध्य से ही कल्याण हुआ करता है।

ब्रह्मचर्यं विहीनानि बृहन्त्यैश्वर्यवन्त्यपि ।
कुलान्याशु विनश्यन्तीत्येतत् प्रत्यक्षमीक्ष्यते ॥२५॥

व्याख्या—ब्रह्मचर्य से हीन, बड़-बड़े ऐश्वर्य सम्पन्न भी खानदान शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। यह बात प्रत्यक्ष दीखती है।

सर्वमेतद् विविच्यैवं युष्माकमुचिता रुचिः।
आत्मवीर्ये सुरक्षायां ब्रह्मचर्यस्य पालने ॥२६

व्याख्या—इन सब बातों पर विचार करके तुम्हारी रुचि विद्याध्ययन के साथ अपने वीर्य की रक्षा तथा ब्रह्मचर्य पालन में होनी चाहिए।

व्यवहारस्तथा कार्यो युष्माभिरिह संसृतौ।
ब्रह्मचर्यव्रतं येन यथावत् पालितं भवेत् ॥२७॥

व्याख्या—तुम्हें इस संसार में इस प्रकार व्यवहार करना चाहिए जिससे तुम्हारा ब्रह्मचर्य व्रत अखण्ड रूप से पालित होता रहे।

अपाघ्नन् देवता मृत्युं ब्रह्मचर्यस्य सेवनात्।
यूयमप्यमृता भूत्वा लभध्वं पुरुषायुषम् ॥२८॥

व्याख्या—देवता (विद्वान्) लोगों ने ब्रह्मचर्य के पालन से मृत्यु को जीता था। तुम भी उनके समान ब्रह्मचर्य पालन करके अमर बनो तथा पूर्ण आयु भोगो।

कुमारी ब्रह्मचर्येण कुमारं विन्दते पतिम्।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छिति ॥२९॥

व्याख्या—कन्या भी ब्रह्मचर्य धारण करके युवा ब्रह्मचारी कुमार को प्राप्त करती है। अर्थात् विदुषी नवयुवती हो विद्वान् नवयुवक से विवाह करती हैं। आचार्य भी ब्रह्मचर्य द्वारा ब्रह्मचारी बालक को उन्नत बनाना चाहता है।

/ विद्वान् राष्ट्रपतो राष्ट्रं ब्रह्मचर्येण रक्षति।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येण भारं भूयो निनीषति ॥३०॥

व्याख्या—विद्वान् राष्ट्रपति भी ब्रह्मचर्य के द्वारा ही अपने राज्य की रक्षा करता है। विषयासक्त राजा से राज्य सुरक्षित नहीं रह सकता। बैल भी ब्रह्मचर्य के बल से गाड़ी में रखे भारी भार को खींचने में समर्थ होता है।

(स्वागता)

पञ्चविंशतिसमीन युवाना,
कन्यकाप्यथ च षोडशवर्षा ।
ब्रह्मचर्यपरिपालन सक्तौ,
तावुभावपि सदैव भवेताम् ॥३१॥

व्याख्या—पच्चीस वर्ष का नौजवान पुरुष तथा १६ वर्ष की नवयुवति कन्या दोनों ही उक्त अवस्था तक पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत के पालन में तत्पर रहें ।

(भुजंगप्रयातम्)

कुमारा यथा ब्रह्मचर्यं चरन्ति,
कुमार्यस्तथा ब्रह्मचर्यं चरेयुः ।
अवर्णादिवर्णोच्चसूच्चारणाच्चा-
चतुर्वेद शास्त्राणि यावत् पठेयुः ॥३२॥

व्याख्या—जैसे कुमार बालकों के लिए ब्रह्मचर्य पालन आवश्यक है–वैसे ही कुमारी बालिकाओं के लिए भी नितान्त आवश्यक है। कन्यायें अवर्ण आदि वर्णों के शुद्ध उच्चारण की शिक्षा लेकर चारो वेदों की शिक्षा तक पढ़ने का अधिकार रखती हैं। कुमारों के समान कुमारियों को भी विद्या और ब्रह्मचर्य की शिक्षा से युक्त होना चाहिए

सवर्णाः सवर्णं पतिं लब्धवर्णम्,
युवत्यो युवानंहिविन्देयुरार्यम् ।
जघन्यं निगृह्यार्यगृह्या गुणोघैः,
प्रसन्ना सदैवार्यकन्या भवेयुः ॥३३॥

व्याख्या—समान वर्ण वाली नवयुवति विदुषी कन्यायें अपने समान वर्ण वाले नवयुवक विद्वान् पति से विवाह करें। आय कन्याए अपने आर्योचित गुणसमूह से युक्त होकर निकृष्ट, गुणहीन, अनार्य

पुरुष से विवाह कभी न करें, तथा अपने अनुरूप रूपवान् पति को प्राप्त कर सदा प्रसन्न रहें।

(स्रग्धरा)

सद्योविद्यानवद्याऽधिगमयितुमथाप्यात्मनोनाधिगन्तुं ।
सर्वत्रा कष्टमिष्टा भवति यदि तदा सप्त दोषाः प्रहेयाः ।
आलस्यं मोहगोष्ठी बहुलचपलता स्तब्धता कामचेष्टाः,
मिथ्यागर्वश्च सर्वेऽप्यरय इव पुरा घ्नन्ति विद्यार्थिनोऽमी ।३४।

व्याख्या—यदि शीघ्र ही अपने लिए हितकर श्रेष्ठ विद्या, विना कष्ट के पढ़नी-पढ़ानी सर्वत्र इष्ट हों तो ये निम्नलिखित सात दोष छोड़ देने चाहिए—आलस्य, मोह, गोष्ठी (गपशप लगाना) चञ्चलता, ढीठपना, कामवासना प्रधान चेष्टा और मिथ्या अभिमान। ये सात दोष शत्रु के समान समझने चाहिए जो विद्यार्थियों का भविष्य नष्ट करने वाले हैं।

(शिखरिणी)

द्युषद्गीः श्लोकानां रुचिरमिदमध्यर्धशतकं,
मुदाध्येयं गेयं सततमवधेयं च मनुजैः ।
दृढं कृत्वा कामादुपरतिमथोदात्तचरितै,
हृदाधार्यः सर्वैरपि चरितरक्षामणिरयम् ।।३५।।

व्याख्या—संस्कृत भाषा में निर्मित ये सुन्दर १५० से ऊपर श्लोक, खुशी से मनुष्यों को पढ़ने चाहिए। गाने चाहिए और सदा स्मरण रखने चाहिए। इन को पढ़कर कामवासना से दृढ़ उपरति (निवृत्ति) करें। अपने चरित्र को पवित्र बनावें। और इस "चरित्ररक्षामणि" नामक ग्रन्थमणि को मणि के समान हृदय में धारण करें।

इति चतुर्थोऽध्यायः
ग्रन्थश्चायं समाप्तः

आर्य-युवक-सन्देश

लेखक—श्री मास्टर मांगेराम एम. ए. (राजनीति)

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने आर्य-युवकों को संगठित करने की कामना से प्रत्येक आर्यवीर के कर्त्तव्य, तथा आर्य जाति का नवीन साहित्य प्रदान करके आर्यवीरों को प्रोत्साहित किया है। भाषा सरल है। नवीन विचार धारा से ओत-प्रोत है। सुन्दर कागज पर मुद्रित है। मूल्य एक प्रति ६० पैसे।

छात्रोपयोगी विचार माला

लेखक—श्री जगदेवसिंह शास्त्री "सिद्धान्ती"

आदरणीय श्री सिद्धान्ती जी ने इसमें छात्रों के लिए उपयोगी विषयों पर छोटे-छोटे लेख प्रस्तुत किये हैं। भाषा एवं भाव प्रांजल हैं। प्रत्येक छात्र को इसका एक बार अवश्य अध्ययन करना चाहिये। मूल्य एक प्रति ६० पैसे।

सदाचार, वेद-वाद, मनोविज्ञान और नव-निर्माण का भारत भर में

प्रसिद्ध मासिक-पत्र

मधुर-लोक



उच्च स्तर का मासिक-पत्र

अपने ज्ञान-वर्द्धक के लिए अवश्य मंगावें।

वार्षिक मूल्य ५) रु. भेजकर नियमित सदस्य बनें

'मधुर-लोक' कार्यालय

आर्य समाज मन्दिर, बाजार सीताराम, दिल्ली-६

दूरभाष : २६८२३१

नैतिक एवं धार्मिक साहित्य पढ़ें

सदाचार-बोध	०.५०	शिक्षाप्रद कहानियाँ	० ५०
सदाचार-चद्रिका	१.५०	छात्रोपयोगी विचार माला	०.६०
व्यवहार भानु	०.३५	प्राणायाम विधि	०.२५
धूम्रपान ही क्यों ?	०.४०	चुडैल चाय	०.७५
सीमा के प्रहरी	२,००	अमर क्रान्तिकारी	२.००
ब्रह्मचर्य-प्रदीप	४.००	जीवन-प्रभात	० ५०
संस्कृतांकुर	१.२५	मधुर संस्कृत निबन्ध माला	१.५०
वैदिक-संन्ध्या	०.१०	नित्य कर्म-विधि	०.४०
मातृ-मन्दिर	०.५०	हम संस्कृत भाषा क्यों पढ़ें	०.५०
उर्मिल-मंगल	०.५०	वैदिक प्रार्थना	१.५०
वैदिक-प्रवचन	२.२५	ईश्वर-दर्शन	१.५०
वैदिक प्रवचन माधुरी	१.००	दृष्टान्त-मंजरी	२.००

महापुरुषों की जीवनियाँ

चौ. छोटूराम जीवन-चरित्र	६.००	महर्षि दयानन्द	०.७५
अमर सेनानी स्वमी श्रद्धानन्द	२.००	पं० गुरुदत्त विद्यार्थी	१.३५

भजनों की पुस्तकें

मधुर भजन पुष्पांजलि	१.५०	मधु महिला गीतांजलि	.५०
रणभेरी	०.२५	आजादी कीम शाल	०.५०
वक्त की पुकार	०.५०	जय जवान	०.५०
अनोखी कुर्बानी	०.५०	कमाल की बात	०.६०
जय किसान	०.५०	जय जवान-जय किसान	०.५०
ओंकार भजन माला	०,१०	वीर अभिमन्यु	१.००

आयुर्वेद ग्रन्थ

आयुर्वेदीय द्रव्य गुण विज्ञान	१०.००	सचित्र रस शास्त्र	१२.००
सचित्र पंच कर्म विज्ञान	६.००	घर का वैद्य	३.००

प्राचारार्थ वितरित करने के लिए ट्रेक्ट

श्रुति सुधा ०.२०, गायत्री-माता ०.१०, संध्या माता ० .१०
श्रद्धा माता ०.२५, स्थित प्रज्ञोपनिषद् ०.१०, ताशकन्द भावना ०.१०

मधुर प्रकाशन, आर्य समाज, बाजार सीताराम, दिल्ली-६


महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान केन्द्र
तिथी
पुस्त०